॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

मार्च २०१९

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५७
अंक ३

वार्षिक १३०/– **एक प्रति १५/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–
१० वर्षों के लिए – रु. १३००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ४० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २०० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १७०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ८५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. श्रीरामकृष्णावतारस्तोत्रम् १०१
२. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) १०१
३. सम्पादकीय : श्रीरामकृष्ण के जीवन में माँ सरस्वती की आराधना १०२
४. सेवा द्वारा हम अपना ही कल्याण करते हैं (स्वामी ओजोमयनान्द) १०४
५. निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (२७) १०६
६. मूर्तिकार श्रीरामकृष्ण (स्वामी शुद्धिदानन्द) १०८
७. साधुओं के पावन प्रसंग (३) (स्वामी चेतनानन्द) ११०
८. यथार्थ शरणागति का स्वरूप (६/१) (पं. रामकिंकर उपाध्याय) ११२
९. मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (१५) (स्वामी अखण्डानन्द) ११५
१०. श्रीगुरुनानक देव तथा श्रीरामकृष्ण देव (ए. पी. एन. पंकज) ११७
११. सारगाछी की स्मृतियाँ (७७) (स्वामी सुहितानन्द) १२२
१२. विविध भजन
आज अयोध्या धाम (स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती) रामकृष्ण का नाम गान कर (अक्षयकुमार सेन) १२३
१३. (युवा प्रांगण) चाबी कहाँ रखी थी, मिल नहीं रही है (स्वामी मेधजानन्द) १२४
१४. मुण्डक-उपनिषद-व्याख्या (९) (स्वामी विवेकानन्द) १२५
१५. (बच्चों का आँगन) निमाई और ब्राह्मण देवता १२८
१६. आध्यात्मिक जिज्ञासा (३९) (स्वामी भूतेशानन्द) १२९
१७. शिवार्चनम् (सत्येन्दु शर्मा) १३०

१८. आध्यात्मिक जीवन हेतु उपयोगी बातें (स्वामी सत्यरूपानन्द) १३१
१९. मेरी दृष्टि में श्रीरामकृष्ण (अरविन्द घोष) १३२
२०. (प्रेरक लघुकथा) खींच लो कृपाण, पड़े रहने दो म्यान (डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर) १३३
२१. ईशावास्योपनिषद (१५) (स्वामी आत्मानन्द) १३४
२२. आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (३१) (स्वामी निखिलेश्वरानन्द) १३६
२३. (कविता) इस बार की शिवरात्रि (व्रजवासी बाबा) १३७
२४. स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (१३) (प्रव्राजिका व्रजप्राणा) १३८
२५. रामकृष्ण मिशन की संचालन समिति की रिपोर्ट १४०
२६. समाचार और सूचनाएँ १४२

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

श्रीरामकृष्ण देव के सर्वधर्म-समन्वय की अनुभूति को दर्शाता हुआ यह चित्र रामकृष्ण आश्रम, मैसूर की प्रदर्शनी का है।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री रामकृष्ण सामरिया, वसुंधरा इनक्लेव, दिल्ली	१५००/-
श्री विजय चंद्रा, गौतम बुद्ध मार्ग, लखनऊ (उ.प्र.)	१०००/-
श्री बिरजू राम साहू, बलोदा बाजार (छ.ग.)	१०००/-
श्री नुनियाराम मास्टर, चंडीगढ़	२०००/-
श्री रघुनन्दन लाल शांडिल्य, सड्डू, रायपुर (छ.ग.)	१५००/-
श्रीमती शारदा श्रीवास्तव, प्रतापगढ़ (उ.प्र.)	१८७०/-

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है । विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है । आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें । विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है । **२.** रचना बहुत लम्बी न हो । पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय । पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो । आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं । **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें । **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें । अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें । **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा । न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा। **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें । यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें ।

मार्च माह के जयन्ती और त्योहार

४	**शिवरात्रि**
८	**श्रीरामकृष्ण देव**
२१	**होली, श्रीचैतन्य महाप्रभु**
२४	**स्वामी योगानन्द**

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
५४४. श्री प्रदीप नारायण तिवारी, समता कॉलोनी, रायपुर	पी. एल. तिवारी शा. मीडिल शाला, चंदखुरी फार्म, रायपुर
५४५. श्रीमती कृष्णा बॅनर्जी, शंकर नगर, रायपुर (छ.ग.)	नावबैछा कॉलेज, पो. दुलहत, जिला - लखीमपुर (असम)
५४६. श्री अनुराग (स्मृति में, श्रीरामराज, एवं श्रीमती उषाप्रसाद) दिल्ली	गवर्नमेंट पी. जी. कॉलेज, राणापुर रोड, झाबुआ (म.प्र.)
५४७. ,, ,,	स्वामी आत्मानन्द विद्यालय, ग्रा.- चिहरीपारा, जि.- नारायणपुर
५४८. ,, ,,	शिलापाथर कॉलेज, मु. पो. शिलापाथर, जि. धेमाजी (असम)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५७ मार्च २०१९ अंक ३

श्रीरामकृष्णावतारस्तोत्रम्

सल्लोका विषयविरागिणो यदर्थं
सन्त्यक्तः सुखनिबहो बुधैश्च बाल्यात्।
यल्लब्धुं कठिनतपो हि चर्यते ज्ञै-
र्लिप्स्यन्ते त्रिदशगणाः सदा पदं यत्।।१।।
यस्मान्नास्ति भगवतो हि किंचिदूर्ध्वं
सुप्राप्यश्च न खलु कस्यचिद्यतोऽन्यः।
सोऽसावेव परमहंसरामकृष्णः,
सर्वज्ञः सकलमनोमतः प्रशान्तः।।
रक्षार्थं निजवचनं त्रितापहर्ता
गौरांगेन भगवता प्रतिश्रुतं यत्।
भक्तार्थं परमदयालु गतस्त्वं
मह्यां ते पुरुष समर्पयामि सर्वम्।।

– विषय विरागी सन्त जिनके लिये बचपन से ही सभी विषय-सुखों का परित्याग करते हैं एवं ज्ञानी जिस पद-प्राप्ति की आकांक्षा से तपस्या करते हैं, जिस पद की प्राप्ति हेतु देवता भी सदा लालायित रहते हैं, इस संसार में जिस भगवान से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है, इस जगत् में जिस भगवान से श्रेष्ठ पाने योग्य कोई वस्तु नहीं है, वे सर्वज्ञ सर्वप्रिय शान्तचित्त परमहंसदेव श्रीरामकृष्ण ही हैं !

हे त्रितापहारी रामकृष्ण देव ! आपने जीवों का उद्धार करने के लिये भगवान श्रीगौरांगदेव के रूप में प्रतिज्ञा की थी। हे भक्तों के परम दयालु ! आप अपने वचन की रक्षा हेतु पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं। अत: मैं आपके चरणों में सर्वस्व समर्पण करता हूँ।

पुरखों की थाती

दिवसेनैव तत् कुर्याद् येन रात्रौ सुखं वसेत्।
यावज्जीवं च तत्कुर्याद् येन प्रेत्य सुखं वसेत्।।६३१।।

– दिन भर ऐसे कर्म करने चाहिये, जिससे रात में चैन से सो सके और जीवन भर ऐसे कर्म करने चाहिये, जिससे मृत्यु के बाद सुखपूर्वक रह सके। (विदुरनीति)

दानं भोगो नाशः तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति।।६३२।।

– धन की तीन ही गतियाँ हैं – दान, भोग अथवा नाश। जो व्यक्ति न दान करता है और न भोग, उसका धन तीसरी गति अर्थात् विनाश को प्राप्त होता है।

यादृशैः सन्निविशते यादृशांश्चोपसेवते।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति पूरुषः।।६३३।।

– मनुष्य जैसे लोगों के साथ निवास करता है, जिस तरह के लोगों का संग करता है और जैसा होने की इच्छा करता है, वह (क्रमश:) उसी प्रकार का हो जाता है।

गुणवान् वा परजनः स्वजनो निर्गुणोपि वा।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान् यः परः पर एव च।।६३४।।

– गुणवान शत्रु की अपेक्षा गुणहीन मित्र अच्छा है, क्योंकि अपना आदमी गुणहीन हो, तो भी अपना ही है; जबकि पराया तो पराया ही होता है।

सम्पादकीय

श्रीरामकृष्ण के जीवन में माँ सरस्वती की आराधना

(गतांक से आगे)

ऋषि ने अपरा विद्या और परा विद्या को थोड़ा और स्पष्ट किया – **तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।।**

– अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, ये अपरा विद्या हैं और जिससे उस अक्षर परमात्मा का ज्ञान होता है, वह परा विद्या है। इस प्रकार अंगिराजी ने विद्या के दो विभागों अपरा और परा के विषयों का संक्षिप्त निर्देश किया। शास्त्राध्ययन, कला, तकनीकी, प्रबन्धन आदि लौकिक, भौतिक अभ्युदय करनेवाली शिक्षा भी विद्या है, लेकिन वह अपरा विद्या है। समाज के अधिकांश लोग केवल यहीं तक माँ सरस्वती की आराधना को सीमित कर देते हैं।

श्रीरामकृष्ण देव ने अपरा और परा दोनों विद्याओं का अपने जीवन में यथायोग्य विकास कैसे किया था, इस सम्बन्ध में थोड़ा सप्रसंग विचार-विमर्श करते हैं।

श्रीरामकृष्ण द्वारा अपरा विद्या के प्रति रुचि

श्रीरामकृष्ण देव की अपरा विद्या के प्रति अनुराग के सम्बन्ध में श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी अपूर्वानन्द जी महाराज लिखते हैं – ''पाँचवाँ वर्ष लगते ही खुदीराम जी ने गदाधर (श्रीरामकृष्ण के बचपन का नाम) का विद्यारम्भ संस्कार कराकर उसे गाँव की पाठशाला में पढ़ने को भेजा। पाठशाला में गदाधर की अच्छी प्रगति होने लगी। थोड़े ही दिनों में बालक ने काम भर पढ़ना-लिखना सीख लिया। नित्य नयी रचनात्मकता, अनुकरणशीलता, देवी-देवताओं की मूर्ति गढ़ने व चित्र आँकने में इस बालक ने विशेष प्रतिभा का परिचय दिया। गदाधर श्रुतिधर और स्मृतिधर था। एक बार वह जो कुछ देख या सुन लेता, उसे किसी भी प्रकार से नहीं भूलता था। गाँव में कथा, नाटक और गीत आदि तो सदा होते ही रहते थे। गदाई (गदाधर) ने सुन-सुनकर ही बहुत से भजन, गीत, पौराणिक उपाख्यान और नाटकों के संवाद याद कर लिये थे।''[१]

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट विदित होता है कि श्रीरामकृष्ण की बाल्यकाल में अपरा विद्या, लौकिक विद्या के प्रति भी रुचि थी। वे बड़े लगन से इन विद्याओं का अर्जन करते। वे कहते थे, 'जब तक जीयें, तब तक सीखें।' जब उनके पिताजी उन्हें गोद में लेकर अपने पूर्वजों के नाम एवं देव-देवियों के छोटे स्तोत्र तथा प्रणाम आदि अथवा रामायण, महाभारत के कोई विचित्र उपाख्यान उन्हें सुनाते, तो वे एक बार सुनकर कण्ठस्थ कर लेते।

क्रीड़ा – जब श्रीरामकृष्ण छोटे थे, उन्होंने पाठशाला जाना प्रारम्भ ही किया था। तब वे कभी अपने साथियों को साथ लेकर पाठशाला के समीप और कभी माणिक बाबू के आम के बगीचे में खेलते रहते थे। इससे उनमें क्रीड़ा के प्रति रुचि का संकेत मिलता है।

संगीत कला – संगीत कला विद्या की महत्त्वपूर्ण विधा है। इसकी शिक्षा उन्हें कहाँ से मिली, यह मुझे ज्ञात नहीं है, किन्तु वे भजन और गीत बड़े मधुर और तन्मय होकर गाते थे, जिसे सुनकर श्रोताओं का मन भाव-विभोर हो जाता था। एक बार गाँव की महिलायें आनुड़ ग्राम में स्थित विशालाक्षी देवी के मन्दिर में पूजा करने जा रही थीं। बालक गदाधर भी उनके साथ जाने लगे। महिलाओं के अनुरोध पर गदाधर मधुर कण्ठ से देवी-महिमा के गीत गाने लगे। दक्षिणेश्वर में उनके भजन सुनने के लिये भक्तवृन्द लालायित रहते थे। सुना जाता है कि रानी रासमणि जब दक्षिणेश्वर आती थीं, तो श्रीरामकृष्ण से भजन अवश्य सुनती थीं। भक्तों के घर जा-जाकर उन्होंने भजन, कीर्तन और उपदेश देकर उनमें भक्ति-भाव का संचार किया था।

नृत्य कला – श्रीरामकृष्ण देव कभी-कभी भजन, कीर्तन के साथ नृत्य भी करते थे। दक्षिणेश्वर में, किसी भक्त के घर और पानीहाटी के उत्सव में उनके द्वारा कीर्तन और नृत्य करने की बात सर्वविदित है। प्रत्यक्षदर्शी लोग कहते थे कि उनके पाँव कभी बेताल नहीं पड़ते थे। वे सुर-ताल-लय

के साथ ठीक कदम मिलाकर नृत्य करते थे। उनके दैवी संगीतमय नृत्य-कीर्तन ने कितने लोगों को आकर्षित कर भगवान की ओर उन्मुख किया। इस प्रकार हम ठाकुर में नृत्य कला के प्रति अभिरुचि और उसका ईश्वर-भक्ति में रूपान्तरण की कला देखते हैं।

मूर्ति कला – श्रीरामकृष्ण देव के जीवन का अनुशीलन करने पर यह ज्ञात होता है कि वे मूर्तियाँ भी बनाते थे। जब वे छोटे थे, तो खेल-खेल में मिट्टी की मूर्तियाँ बनाया करते थे। स्वामी सारदानन्द जी महाराज लिखते हैं – "देव-देवियों के मूर्ति-निर्माण करने में गदाधर विशेष दक्ष हो गया था। उसका धार्मिक स्वभाव उन मूर्तियों का निर्माण कर अपने साथियों को लेकर उनका यथाविधि पूजन करने के निमित्त बहुधा प्रेरित करता था।"[२]

जब दक्षिणेश्वर में श्रीराधा-गोविन्दजी के 'नन्दोत्सव' में विशेष पूजन, भोग-रागादि के बाद पुजारी क्षेत्रनाथ चट्टोपाध्याय श्रीगोविन्दजी को शयन देने ले जा रहे थे, तब फिसलकर गिर पड़े और श्रीमूर्ति का एक चरण टूट गया, तब श्रीरामकृष्ण ने ही बड़ी कुशलता से उसे जोड़ा था।

चित्रकारी – गदाधर की चित्रकला में भी रुचि थी। स्वामी सारदानन्द जी लिखते हैं – "ऐसा सुना जाता है कि गौरहाटी नामक गाँव में छोटी बहन श्रीमती सर्वमंगला को बालक एक दिन देखने गया था। घर में प्रवेश करते ही उसने देखा कि बहन प्रसन्नतापूर्वक अपने पतिदेव की सेवा कर रही है। यह देखकर उसके कुछ दिन बाद उसने अपनी बहन तथा उसके पतिदेव का उस अवस्था का एक चित्रांकन किया था। हमने सुना है कि परिवार के सभी लोग उस चित्र की दोनों मूर्तियों के साथ श्रीमती सर्वमंगला तथा उसके पतिदेव के अत्यन्त सादृश्य को देखकर परम विस्मित हुए थे।"[३]

नाट्य कला – श्रीरामकृष्ण बचपन से ही अपने साथियों के साथ विभिन्न प्रकार के खेल-नाटक आदि खेला करते थे, बहुत सुन्दर अभिनय करते थे। अभिनय से सम्बन्धित उनकी सबसे प्रसिद्ध घटना है शिवरात्रि के दिन गाँव के नाटक में शिव बनकर अभिनय करने की। इनके अभिनय को देखकर दर्शकों ने कहा था, वाह ! गदाई कितना सुन्दर लगता है ! शिवजी की भूमिका में वह ऐसा अभिनय करेगा, हमें ऐसी आशा न थी। इसे लेकर हम नाटक मंडली बना लेंगे आदि। ऐसी श्रीरामकृष्ण की अपरा विद्या में रुचि थी।

श्रीरामकृष्ण द्वारा पराविद्या की उपासना

उपनिषद के ऋषि ने हजारों वर्ष पहले यह उद्घोषणा की – **सा विद्या या विमुक्तये** – अर्थात् विद्या वह है, जो हमें मुक्ति प्रदान करे। अपरा विद्या हमें मुक्ति प्रदान नहीं कर सकती। इसलिये ऋषि अंगिरा ने कहा था – **अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते** – अर्थात् पराविद्या वह है, जिससे उस अक्षर परमात्मा का ज्ञान होता है। श्रीरामकृष्ण देव के जीवन में पराविद्या के प्रति रुचि हम किशोरावस्था से ही देखते हैं। जब उनके बड़े भाई ने कलकत्ता में लाकर उन्हें पढ़ने के लिये कहा, तब श्रीरामकृष्ण देव ने उत्तर दिया था – "दाल-रोटी प्राप्त करनेवाली विद्या मुझे नहीं चाहिये। मैं तो ऐसी विद्या सीखना चाहता हूँ, जिससे ज्ञान का उदय होकर मनुष्य वास्तव में कृतार्थ हो जाता है।"[४] इस प्रकार जीवन के प्रारम्भिक काल से भौतिक विद्या अपरा विद्या की असारता को श्रीरामकृष्ण देव ने समझ लिया था और आध्यात्मिक परा विद्या की ओर अग्रसर हुये थे।

श्रीरामकृष्ण देव ने अपने साधक जीवन में दक्षिणेश्वरी भवतारिणी माँ काली का दर्शन व्याकुलतापूर्वक वैधी भक्ति का अतिक्रमण कर रागानुगाभक्ति के द्वारा किया। कालान्तर में उन्होंने भैरवी ब्राह्मणी के निर्देशन में तन्त्र-साधना की और उसमें सिद्ध हुये। जटाधारीजी से उन्होंने वात्सल्य भाव की साधना की। स्वत:स्फूर्त उन्होंने मधुरभाव की साधना की और श्रीकृष्ण का दर्शन किया। इसी साधना काल में उन्हें 'भागवत-भक्त और भगवान – तीनों एक हैं तथा एक ही तीन हैं' का दर्शन हुआ। तोतापुरीजी के सान्निध्य में उन्होंने वेदान्त-साधना की और तीन दिनों तक अखण्ड समाधि में लीन रहे। सूफी गोविन्द राय से दीक्षा लेकर उन्होंने इस्लाम धर्म की साधना की और लम्बी दाढ़ीवाले ज्योतिर्मय पुरुष का दर्शन किया। बाद में ईसामसीह का दर्शन किया। भावावस्था में उन्होंने हिन्दू-धर्म के कई देव-देवियों के दर्शन किये। सत्संग, भजन-कीर्तन की तल्लीनता में उन्हें बार-बार समाधि होती थी। इस प्रकार श्रीरामकृष्ण देव के जीवन में विद्यादेवी सरस्वती की दोनों विद्याओं की आराधना, अपराविद्या का आध्यात्मीकरण, उसका सदुपयोग और पराविद्या से अध्यात्म की सर्वोच्चावस्था दृष्टिगोचर होती है। ○○○

सन्दर्भ – १. श्रीरामकृष्ण संक्षिप्त जीवन तथा उपदेश, पृष्ठ ६ **२.** श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग, भाग-१, पृष्ठ ७९-८० **३.** वही, पृष्ठ. ७८ **४.** वही, पृष्ठ १२३

सेवा द्वारा हम अपना ही कल्याण करते हैं

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

स्वास्थ्य लाभ के लिये उन दिनों स्वामी विवेकानन्द जी दार्जिलिंग में थे। जब उन्हें यह समाचार मिला कि कलकत्ता में प्लेग फैला हुआ है, तब वे तत्काल कलकत्ता चले आए। उन्होंने आकर देखा कि प्लेग से जितने लोगों की मृत्यु हुई, उससे कहीं अधिक लोगों के मन में आतंक भर गया है। बड़ी संख्या में लोग मृत्यु के डर से शहर छोड़कर भाग रहे हैं। लोगों के मन में साहस संचार करने के लिए स्वामीजी ने साधारण जनता के बीच घोषणा पत्र वितरित कर यह बतला दिया कि रामकृष्ण मिशन उनकी सहायता के लिये उनके साथ है। इसके अलावा स्वामीजी ने निश्चय किया कि जगह-जगह प्लेग पीड़ितों के लिये सेवा केन्द्र स्थापित करेंगे। किन्तु उसके लिये धन कहाँ से आयेगा? एक गुरुभाई ने यह प्रश्न किया। स्वामीजी ने तुरन्त उत्तर दिया, क्यों? आवश्यकता पड़ने पर मठ के लिये जो जमीन है, उसे बेच दूँगा। हम लोग फकीर हैं। भिक्षा करके वृक्ष की छाया में रहकर अपना दिन व्यतीत कर लेंगे। यदि जमीन बेचने पर सैकड़ों लोगों को बचाया जा सकता है, तो वह जमीन किस काम की? आवश्यक धनराशि अन्य माध्यम से उपलब्ध हो जाने के कारण अन्ततः मठ की जमीन बेचने की आवश्यकता नहीं पड़ी। बेलूड़ मठ की स्थापना के लिये स्वामीजी ने अथक परिश्रम किया और एक-एक पैसे जोड़कर इस मठ की स्थापना की, किन्तु जैसे ही उन्होंने दुखी मनुष्यों की दुर्दशा देखी, उस मठ की जमीन बेचने की बात करते हुए उनकी जिह्वा तक नहीं लड़खड़ायी। स्वामीजी कितने महान सेवापरायण थे, इसका परिचय हमें उपरोक्त घटना से स्पष्ट होता है।

ऐसे सेवापरायण स्वामी विवेकानन्दजी कहते हैं – ''भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं: त्याग और सेवा। आप इन धाराओ में तीव्रता उत्पन्न कीजिए और शेष सब अपने आप ठीक हो जायेगा।[१] वास्तव में हमारी संस्कृति सेवा की संस्कृति है। जहाँ देवकार्य के पूर्ण करने के लिए ऋषि दधीचि ने योगबल के द्वारा स्वयं अपने शरीर का आत्मोत्सर्ग कर दिया था 'स्वं चापि देहं स्वयमुत्सृजामि'।[२] हम ऐसे ही सेवापरायण ऋषियों के वंशज हैं। आइए, हम इसी सेवापरायणता पर विचार-विमर्श करें।

सेवा का महत्त्व – भगवान श्रीकृष्ण यह आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि **'न हि कल्याणकृत्कश्चिद्-दुर्गतिं तात गच्छति'**[३] अर्थात् शुभ कर्म करने वालों की कभी दुर्गति नहीं होती। वही सेवा समस्त शुभ कर्मों में श्रेष्ठ कर्म है। ''किसी मनुष्य ने चाहे एक भी दर्शनशास्त्र न पढ़ा हो, किसी प्रकार के ईश्वर में विश्वास न किया हो और न करता हो, चाहे उसने अपने जीवनभर में एक बार भी प्रार्थना न की हो, परन्तु केवल सत्कार्यों की शक्ति द्वारा उस अवस्था में पहुँच गया है, जहाँ वह दूसरों के लिये अपना जीवन और सब कुछ उत्सर्ग करने को तैयार रहता है, तो हमें समझना चाहिए कि वह उसी लक्ष्य को पहुँच गया है, जहाँ भक्त अपनी उपासना द्वारा तथा दार्शनिक अपने ज्ञान द्वारा पहुँचता है।''[४]

जिस प्रकार एक वृक्ष लगाने से हमें अनेक लाभ होते हैं, जैसे वृक्ष से फल, फूल, पत्ते, वायु और छाया आदि प्राप्त होते हैं, आवश्यकता पड़ने पर औषधि भी बनाई जाती है और तो और वृक्ष के सूख जाने पर उन लकड़ियों से विभिन्न प्रकार के फर्नीचर (कुर्सी, मेज, पलंग, दरवाजे आदि) बनाये जाते हैं, उसी प्रकार एक सेवा के बहुआयामी लाभ हैं। सेवा से जीवन-गठन होता है। जीवन-गठन या आत्मसुधार करना जगत की एक महान सेवा है और सेवा के द्वारा भी आत्मसुधार होता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति में सुधार हो, तो समाज या राष्ट्र या पूरे जगत में ही सुधार स्वतः हो जाता है। वैसे ही सेवा के माध्यम से हमारे व्यक्तित्व में भी बहुत से सकारात्मक परिवर्तन हो जाते हैं। आइए इन पहलूओं पर विचार करें।

(क) पर–कल्याण से स्व-कल्याण होता है – सेवा द्वारा हम दूसरों का ही नहीं वरन् स्वयं का ही कल्याण करते हैं। इसे हम एक सत्य घटना से समझ सकते हैं। एक गाँव में कुछ बच्चे खेल रहे थे। संध्या होने को आयी थी। ऐसे समय में एक ट्रक ने टेलीफोन के तार को तोड़ते हुए गाँव में प्रवेश किया। टेलीफोन का तार सड़क पर झूलने लगा। टेलीफोन के तार के कारण दुर्घटना हो सकती थी, पर अंधेरे के डर से बच्चे वापस घर जाना चाहते थे। ऐसी स्थिति में नवीन ने निर्णय लिया कि इसका कुछ समाधान किये बिना वह वहाँ से नहीं जाएगा।

अत: सड़क से आने-जाने वाली साइकिल व मोटर साइकिल को रोककर वह टेलीफोन तार से अवगत कराता। लोग उसे धन्यवाद देकर चले जाते। नवीन की सेवा-परायणता को देखकर कुछ बच्चे उसके साथ इस कार्य में सहयोग करने लगे। कुछ समय पश्चात् बड़े वेग से एक मोटर साइकिल आती हुई दिखाई दी। तब पूरा अंधेरा हो चुका था। अत: चालक को पहचानना असम्भव था। नवीन अपने दोनों हाथ फैलाकर सड़क के बीच खड़ा हो गया। गाड़ी थमी और नवीन ने चालक को तार के विषय में अवगत कराया तो पता चला कि वे चालक नवीन के पिता थे। उन्होंने पुत्र की सराहना की और उसे वहीं इस कार्य को करते रहने को कहकर कुछ बाँस लेकर आ गये तथा तार को पुन: ऊँचाई में लटका दिया। इस प्रकार दूसरों की सेवा करते हुए स्वयं का कल्याण भी हुआ।

वास्तव में किसी भी प्रकार की सेवा से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हम स्वयं लाभान्वित होते हैं। किसी को गिराने के लिये फेंके गए केले के छिलके से एक दिन हम ही फिसल कर गिरते हैं और मार्ग में बिखरे काँटों को हटा देने से हम स्वयं काँटों की चुभन से बच जाते हैं। जब व्यक्ति किसी को पढ़ाता है तब पढ़नेवाले से अधिक पढ़ाने वाले में निपुणता आती है। किसी लेख के पढ़नेवालों से अधिक लेख लिखनेवाले का कल्याण होता है, क्योंकि उसे उस विषय पर विभिन्न प्रकार से गहन चिन्तन करना पड़ता है। इस प्रसंग में रहीम एक अद्वितीय उदाहरण देते हुए कहते हैं –

यों रहीम सुख होत है उपकारी के संग।
बाटनवारे को लगे ज्यों मेंहदी के रंग।।

अर्थात् जिस प्रकार मेंहदी घिसनेवाले के हाथ में मेंहदी का रंग स्वत: लग जाता है, उसी प्रकार परोपकार करनेवाले को स्वयं ही सुख मिल जाता है।

स्वामी विवेकानन्द जी इस विषय पर स्पष्टत: कहते हैं – ''दूसरों के प्रति हमारे कर्तव्य का अर्थ है – दूसरों की सहायता करना, संसार का भला करना। हम संसार का भला क्यों करें? इसलिए कि देखने में तो हम संसार का उपकार करते हैं, परन्तु असल में हम अपना ही उपकार करते हैं। हमें सदैव संसार का उपकार करने की चेष्टा करनी चाहिए और कार्य करने में यही हमारा सर्वोच्च उद्देश्य होना चाहिए।''[५]

(ख) मन की शान्ति – मनुष्य सदैव शान्ति की प्राप्ति के लिये ही प्रयासरत रहता है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हम शान्ति का ही आनन्द लेना चाहते हैं, परन्तु हमारी क्रियाएँ विभिन्न प्रकार की होती हैं। जिसमें कोई शान्ति पाने में सफल होता है, तो कई अशान्ति में और भी उलझ जाते हैं। आज के व्यस्त संसार में अधिकांश लोग मानसिक तनाव से ग्रस्त हैं और उसका मुख्य कारण हमारा आत्मकेन्द्रित या स्वार्थी हो जाना ही है। जब हम अपने विषय में सोचते हैं, तब हमें एक असन्तुष्टी का बोध होता है, उससे नैराश्य का जन्म होता है, और नैराश्य अशान्ति तथा तनाव का जनक होता है। पर जब हम परोपकार या किसी की सेवा करते हैं, तब हमें आत्मसन्तुष्टि और शान्ति मिलती है। इसे और भी स्पष्ट करने के लिए आइये, हम एक घटना का अवलोकन करें –

एक चिउड़ा की दुकान के पास एक गरीब बच्चा खड़ा हुआ था। दुकान में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को वह अपनी गरीबी और क्षुधा से अवगत कराता था। कुछ लोगों ने उसे दुत्कार दिया, कुछ ने उसे दिखा-दिखाकर मजे लेते हुए खाया, कुछ ने ऐसा व्यवहार बनाया, जैसे वे उस बच्चे को देख ही नहीं रहे हैं, और कुछ ने थोड़ा चिउड़ा उस बच्चे के हाथ में थमा दिया। उपरोक्त सभी व्यक्तियों के विषय में जानकारी ली गई, तो उन लोगों की मन:स्थिति के विषय में कुछ ऐसा पाया गया, जिन लोगों ने बच्चे को दुत्कारा, वे पहले से ही निराशा के शिकार थे तथा अब अपना स्वभाव चिड़चिड़ा बना चुके थे। जिन लोगों ने दिखा-दिखाकर खाया, उन्होंने माता-पिता की अपार सम्पत्ति का भोग किया था, पर स्वयं के जीवन का कुछ विकास नहीं किया था। जिन्होंने सुनकर भी अनुसुना कर दिया, वे स्वार्थी प्रकार के लोग थे। पर जिन्होंने बच्चे को चिउड़ा दिया, वे मानसिक शान्ति में जीवन व्यतीत कर रहे थे। इसके साथ ही प्रत्येक व्यक्ति के लिये बच्चे के मन में क्या प्रतिक्रिया हुई, वह इस प्रकार थी – दुतकारने वाले के लिए बच्चे ने सोचा कि आपको न देना हो, तो मत दीजिए, पर ऐसे अपमानित करके दुतकारने की क्या आवश्यकता है? दिखा-दिखाकर खानेवाले के लिये बच्चे ने सोचा कि यह कैसा मनुष्य है, जिसे मेरी लाचारी पर सुख मिल रहा है, यह मनुष्य नहीं। जिन्होंने अनसुना व्यवहार किया, तब बच्चे ने सोचा था कि आपके साथ यदि कोई ऐसा व्यवहार करता, तो आपको कैसा लगता ! अन्त में चिउड़ा देनेवालों के लिये बच्चे ने बहुत-बहुत दुआएँ दीं कि वह और धनी हो, सुख-चैन से रहे आदि। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हमारे परोपकार से हम स्वयं शान्ति से

शेष भाग पृष्ठ ११४ पर

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (२७)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

(निवेदिता के पत्रांश)

परन्तु अहा! सोमवार का अपराह्न! श्रीमती ब्रिग्स और मैं सोफा तथा फर्श पर बैठी थीं; और वे बोलते रहे – बोलते रहे – बोलते रहे – जबकि तुम्हारी देवदूती के समान बहन (श्रीमती लेगेट) ने सभी को दूर रखा। उस समय मानो हम लोग भारत में पहुँच गये थे। जो लोग अद्वैतवाद तथा वैदिक साहित्य को पसन्द करते हैं, उनकी तुलना में मैं स्वयं को अति तुच्छ समझा करती थी, परन्तु उस दिन मुझे दूसरे पक्ष का क्या ही अद्भुत रूप देखने को मिला!

वह रामप्रसाद के एक भजन से आरम्भ हुआ और मैं तुम्हारे लिए उस दिन की सारी बातों का पूरा विवरण देने का प्रयास करूँगी –

जिस देश में रात नहीं होती,
मुझे उसी देश का एक आदमी मिला है।
अब मेरे लिए दिन क्या और सन्ध्या भी क्या!
सन्ध्या आदि सारे अनुष्ठान
अब मेरे लिए निरर्थक हो गए हैं।

मेरी नींद खुल चुकी है।
अब मैं भला और कैसे सो सकता हूँ!
मैं योग और याग में जाग रहा हूँ।
माँ, योगनिद्रा तुझे वापस देकर
मैंने निद्रा को ही सदा के लिए सुला दिया है।

नूपुर में ताल मिलाकर
मैंने उस ताल का एक गाना सीखा है;
वह ताल – 'ता धिन, ता धिन' –
ध्वनि के साथ बज रहा है।
एकाग्रता को मैंने अपना महान गुरु बनाया है।

कवि रामप्रसाद कहते हैं – रे मन,
इशारे से ही मेरी बात को समझ ले।
जिस तत्त्व को मैं माँ कहकर पुकारता हूँ,
षड्दर्शन भी जिन काली को नहीं जान पाते,
उसका रहस्य, क्या सबके सामने प्रकट कर दूँ!

"श्रीरामकृष्ण देखते कि उनके भीतर से एक श्वेत धागे-सी किरण निकल रही है, जिसके अन्तिम छोर पर एक ज्योतिपुंज है। वह ज्योतिपुंज खुल जाता और उसके भीतर हाथ में वीणा लिए हुए जगदम्बा दीख पड़तीं। इसके बाद वे वीणा बजाने लगतीं। वे ज्यों-ज्यों उसे बजाती जातीं, त्यों-त्यों वे देखते कि वह संगीत क्रमशः पक्षियों, पशुओं तथा ब्रह्माण्डों में परिणत होता जाता और सब कुछ सुव्यवस्थित होता जाता। इसके बाद माँ वीणा बजाना बन्द कर देतीं और सब कुछ लुप्त हो जाता। वह प्रकाश क्रमशः क्षीण से क्षीणतर होता जाता और अन्ततः एक ज्योतिपुंज मात्र बच रहता। फिर वह किरण भी क्रमशः छोटी होती जाती और अन्ततः सब कुछ उन्हीं के भीतर विलीन हो जाता। ...

"अहा, मेरे सामने कैसे-कैसे अद्भुत दृश्य प्रकट होते और मेरे जीवन का सर्वाधिक अद्भुत दृश्य था – दक्षिणेश्वर के विशाल वृक्ष के नीचे फैले अन्धकार में छायी वह पूर्ण निस्तब्धता, जो केवल सियारों के चिल्लाने की आवाज से ही भंग होती। रात-दर-रात हम वहीं बैठते, पूरी रात बीत जाती, वे मुझसे बातें करते रहते। उस समय मैं एक बालक मात्र था।

"स्वामीजी, आप उनकी बगल में बैठते थे या सामने?"

"दोनों तरह से ही! ऐसा केवल कुछ ही दिन या कुछ ही सप्ताह नहीं चला था! ऐसा ही वर्षों तक चला था!! हरि ओम्! हरि ओम्!"

हाँ युम, ६ अक्तूबर – एक वर्ष पूर्व, के बाद मैंने उनके मुख से एक बार फिर उसी पुराने मंत्र का उच्चारण सुना – "हरि ओम्! हरि ओम्!"

इसके बाद वे कहते रहे – "गुरु को सर्वदा शिव मानना होगा और सर्वदा उनकी शिव के रूप में पूजा करनी होगी, क्योंकि वे शिक्षा देने के लिए वृक्ष के नीचे बैठे थे और उन्होंने अज्ञान का नाश कर दिया था। व्यक्ति को अपने सारे कर्म उन्हें समर्पित कर देने होंगे, अन्यथा पुण्य भी एक बन्धन हो जाएगा और नए कर्मों की सृष्टि करेगा; इसीलिए

हिन्दू लोग किसी को एक गिलास पानी देते हुए भी कहते हैं – यह 'पृथ्वी को' या 'जगदम्बा को' समर्पित करता हूँ। एक ही हैं, जो बिना किसी अनिष्ट के सब कुछ ग्रहण कर सकते हैं; जो चिरकाल से अक्षय, अव्यय तथा अविकारी हैं और जिन्होंने जगत् का सारा विष पीकर स्वयं को नीलकंठ बना लिया है। अपने सारे कर्म शिव को अर्पित कर दो।''

इसके बाद वे त्याग-वैराग्य के प्रसंग में कहने लगे – ''अपनी युवावस्था में ही इसे स्वीकार कर लेना कितना उत्तम है! (रात को वे फिर इसी प्रसंग पर आये और अल्बर्ट से त्याग के लिये हार्दिक अनुरोध करने लगे), त्याग के जीवन को केवल अपना वार्धक्य प्रदान कर पाना बड़े दु:ख की बात है। जो लोग वृद्धावस्था में इसे अपनाते हैं, वे केवल अपनी मुक्ति ही साधित कर सकते हैं; वे गुरु नहीं हो सकते, दूसरों पर अनुकम्पा नहीं कर सकते। जो लोग युवावस्था में ही इस मार्ग को अपना लेते हैं, वे लोग अपना स्वार्थ त्यागकर अनेक लोगों को भवसागर के पार ले जा सकते हैं।''

इसके बाद वे मेरे स्कूल के प्रसंग में बोले, ''मार्गट, तुम बालिकाओं को अपनी इच्छानुसार हर तरह की शिक्षा प्रदान करो। केवल अक्षर-ज्ञान पर सिर मत खपाओ। इसका कोई खास महत्त्व नहीं है। जी भरकर उन्हें रामप्रसाद, रामकृष्ण, शिव तथा काली का ज्ञान दो। इन पाश्चात्य लोगों के साथ धोखा मत करना, उनके सामने ऐसा मत कहना कि तुम बालिकाओं की औपचारिक शिक्षा के लिए धन जुटा रही हो। कहना कि तुम प्राचीन आध्यात्मिकता की शिक्षा देना चाहती हो और उसके लिए भिक्षा मत माँगो, बल्कि सहायता की माँग करो। याद रखो कि तुम जगदम्बा की सेविका मात्र हो और यदि वे कुछ भी नहीं भेजतीं, तो उन्हें धन्यवाद दो कि उन्होंने तुम्हें (इस कार्य से) मुक्त कर दिया है। मैं तो यही चाहता हूँ कि माँ मुझे मुक्त कर दें।''

[स्वामीजी उन दिनों भक्ति, वैराग्य तथा भावावेश की एक अद्भुत मन:स्थिति में विद्यमान थे। रामप्रसाद के भजन तथा श्रीरामकृष्ण की स्मृतियाँ उन्हें उद्दीपित कर रही थीं। आध्यात्मिक अभिमान से अभिभूत होकर स्वामीजी कह रहे हैं – श्रीरामकृष्ण परमहंस शैतान से आविष्ट एक पागल थे, उन्होंने मुझे तोड़कर चकनाचूर कर दिया था, आदि आदि। जिन श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्रनाथ को चकनाचूर करके उन्हीं की धूलि से एक नवीन मूर्ति का निर्माण किया था, इसका किंचित् विवरण हम 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' से प्रस्तुत करेंगे, विशेषकर इसलिये कि स्वामीजी द्वारा गाया हुआ – ''मेरी नींद खुल चुकी है। अब मैं भला और कैसे सो सकता हूँ!'' – यह भजन वहाँ स्वयं श्रीरामकृष्ण ने गाया था, जिसकी पृष्ठभूमि में थे नरेन्द्रनाथ द्वारा गाये गये कुछ भजन, जिन्होंने श्रीरामकृष्ण के चित्त में 'आग लगा दी थी'। यहाँ बता देना उचित होगा कि रामप्रसाद की पदावली के किसी-किसी संस्करण में इसके कुछ भिन्न पाठ भी देखने को मिलते हैं।]

१८८५ ई. की २२ फरवरी के दिन भक्तगण श्रीरामकृष्ण का जन्म-महोत्सव मना रहे थे। नरेन्द्र, राखाल, बाबूराम, भवनाथ, सुरेन्द्र, गिरीन्द्र, विनोद, हाजरा, रामलाल, राम, नित्यगोपाल, मणि मल्लिक, गिरीश, सींथी के महेन्द्र वैद्य आदि अनेक भक्तों का समागम हुआ है। कीर्तन प्रात:काल से ही चल रहा है। कीर्तन सुनते-सुनते श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट हो गये हैं। श्रीकृष्ण को गौएँ चराने के लिए आने में विलम्ब हो रहा है। कोई ग्वाला कह रहा है, ''यशोदा माई आने नहीं दे रही हैं।'' बलराम जिद करके कह रहे हैं, ''मैं सींग बजाकर कन्हैया को ले आऊँगा।'' बलराम का प्रेम अगाध है! कीर्तनकार फिर गा रहे हैं। श्रीकृष्ण बंशी बजा रहे हैं। गोपियाँ और गोपबालक बंशी की ध्वनि सुन रहे हैं और उनमें अनेकानेक भाव उठ रहे हैं। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ बैठकर कीर्तन सुन रहे हैं।

सहसा उनकी दृष्टि नरेन्द्र की ओर गयी। नरेन्द्र पास ही बैठे थे। श्रीरामकृष्ण खड़े होकर समाधिमग्न हो गये। नरेन्द्र के घुटने को एक पैर से छूकर खड़े हैं। श्रीरामकृष्ण प्रकृतिस्थ होकर फिर बैठे। नरेन्द्र सभा से उठकर चले गये। कीर्तन चल रहा है। श्रीरामकृष्ण ने बाबूराम से धीरे-धीरे कहा, ''कमरे में खीर है, जाकर नरेन्द्र को दे दे।'' ... कीर्तन के बाद श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में आये हैं और नरेन्द्र को प्यार के साथ मिठाई खिला रहे हैं। ... **(क्रमश:)**

शिक्षा का समस्त सार यही है कि तुम्हें एक 'स्वामी' के समान कार्य करना चाहिए, न कि एक 'दास' की तरह। कर्म तो निरन्तर करते रहो, परन्तु एक दास के समान मत करो।
– स्वामी विवेकानन्द

मूर्तिकार श्रीरामकृष्ण

स्वामी शुद्धिदानन्द
अद्वैत आश्रम, कोलकाता

श्रीरामकृष्ण देव को शब्दों द्वारा सीमित नहीं कर सकते। उपनिषद में एक बात आती है – **यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।** अर्थात् वाणी से हम उस तत्त्व को पकड़ नहीं सकते। श्रीरामकृष्ण वह तत्त्व है, जिसे हम शब्दों से पकड़ने की कोशिश करें, तो हमें केवल असफलता मिलेगी। इस प्रबन्ध में मैं श्रीरामकृष्ण के जीवन के एक पहलू को आपके सामने रखने का प्रयास करूँगा।

श्रीरामकृष्ण के जीवन में हमें क्या देखने को मिलता है? यदि हम यह प्रश्न करें, तो इसके उत्तर में मुझे श्रीअरविन्द घोष की एक बात याद आती है। श्रीअरविन्द घोष बहुत सुन्दर और सटीक उत्तर देते हैं –

In Ramakrishna Paramhamsa we see a collosal spiritual capicity, first driving straight to the divine realization and taking as it were the kingdom of heaven by violence.

– ''श्रीरामकृष्ण के जीवन में हम अति विशाल आध्यात्मिक शक्ति देखते हैं। एक अति विशाल आध्यात्मिक योग्यता, एक अति विशाल आध्यात्मिक क्षमता, जिसके माध्यम से श्रीरामकृष्ण सीधे अनुभूति तक पहुँच जाते हैं और मानो उस अध्यात्म साम्राज्य पर वे आक्रमण कर देते हैं।'' हम श्रीरामकृष्ण देव के जीवन में देखते हैं कि पहले वे एक मार्ग का अनुसरण करते हैं और उसका अनुसरण करके उस मार्ग के द्वारा दो-चार दिनों में ही सीधे उस परम तत्त्व का अनुभव कर लेते हैं। उसके बाद दूसरे, तीसरे मार्ग का अनुसरण करते हैं। एक धर्म का अनुसरण करते हैं, दूसरे धर्म का अनुसरण करते हैं। प्रत्येक मार्गों से, प्रत्येक धर्मों के द्वारा, प्रत्येक पन्थ के द्वारा, श्रीरामकृष्ण देव सीधे अनुभूति तक पहुँच जाते हैं और उस परम तत्त्व का अनुभव कर लेते हैं। जैसे उस परमतत्त्व के ऊपर उन्होंने आक्रमण कर दिया हो, डकैती डाल दी हो।

श्रीरामकृष्ण के जीवन में हमें यह स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। यही एक कारण है, जिसके कारण हम श्रीरामकृष्ण के जीवन को केवल एक अद्भुत जीवन नहीं कह सकते हैं, यह एक महान अद्भुत आश्चर्यमय जीवन है। इस आश्चर्यमय जीवन के एक पहलू को हम देखेंगे।

हम रामकृष्ण के बाल्यकाल में जाते हैं। उनके बचपन का नाम गदाधर था। इस छोटे-से बालक की स्कूल की पढ़ाई में कोई विशेष रुचि नहीं थी। पाठशाला की पढ़ाई-लिखाई को गदाधर ने सीधे अस्वीकार कर दिया था। उसने कहा था – ये दाल-रोटी कमाने वाली पढ़ाई लेकर मैं क्या करूँगा, मुझे वह विद्या चाहिये, जिससे मेरा हृदय सदा के लिये परिपूर्ण हो जाय, मुझे तृप्ति का अनुभव हो। तो पढ़ाई-लिखाई में उनकी कोई विशेष रुचि नहीं थी। गणित के शिक्षक ने किसी तरह उनको जोड़ना सिखाया, लेकिन कैसे घटाते हैं, इसे श्रीरामकृष्ण नहीं सीख पाये। वे जोड़ना जानते थे, लेकिन घटाना नहीं जानते थे। योग करना जानते थे, किन्तु कैसे वियोग करें, यह नहीं जानते थे। यह श्रीरामकृष्ण के व्यक्तित्व का बहुत महत्त्वपूर्ण पहलू है, जिसे हमें याद रखना चाहिए। मूल बात यह है कि दाल-रोटी कमानेवाली विद्या में उनकी कोई रुचि नहीं थी।

श्रीरामकृष्ण का मन सहज ही दूसरी ओर, कुछ कलाओं की ओर जाता था। वे बचपन से ही बहुत ही अच्छे कलाकार थे। वे बहुत अच्छा चित्र बना सकते थे। श्रीरामकृष्ण चित्रकारी हो या संगीत, वे सबमें निपुण थे। वे बहुत अच्छा गाना गाते थे। उनका बहुत मधुर कंठ था। जब वे गाते थे, तो सभी लोग एकदम मंत्रमुग्ध हो जाते थे। वे अच्छा अभिनय कर सकते थे। उनकी अभिनय की तो बात ही क्या है! कामारपुकुर गाँव में उनके मित्रों की एक नाटक-मंडली थी। वे आम के बगीचे में सब दोस्तों को ले जाकर के वहाँ पर तरह-तरह के नाटक प्रस्तुत करते थे। उनका सबसे प्रिय विषय हुआ करता था श्रीकृष्णलीला। स्वयं कृष्ण की वेशभूषा में सज-धज कर कृष्णमय हो जाते थे और समाधिस्थ हो जाते थे। वे कभी शिव के रूप को धारण कर शिव-भाव में एकदम समाधिस्थ हो जाते थे। कभी-कभी तो वे स्त्री की वेषभूषा को धारण कर इस तरह स्त्रीमय हो जाते कि गाँव की महिलाओं को भी यह समझ में नहीं आता था कि स्त्री के वेश में यह गदाधर है ।

चित्रकारी हो, संगीत हो या अभिनय की कला हो, इन

सभी कलाओं में ये बालक, बिल्कुल ही निपुण थे, पारंगत थे। इन सब कलाओं के अलावा उनमें एक और विशेष कला का गुण था और वह यह है कि वे उत्कृष्ट कोटि के मूर्तिकार थे। वे मूर्तियाँ बना सकते थे। गाँव वाले इसका प्रमाण हैं। वे लोग देखते थे कि यह छोटा-सा बालक कैसे मिट्टी के ढेले से सुन्दर-सुन्दर आकृतियाँ गढ़ता था, मूर्तियाँ बनाता था, देव-देवियों की मूर्तियों को अपने हाथों से गढ़ता था। अद्भुत कला थी उनके पास!

परवर्ती काल में जब वे दक्षिणेश्वर आये, तो मथुरबाबू ने एक दिन देखा कि श्रीरामकृष्ण एक मिट्टी की बनायी हुई काली की प्रतिमा की पूजा कर रहे हैं। वह प्रतिमा इतनी सुन्दर थी कि मथुरबाबू को लगा कि शायद यह बाजार से खरीदी हुई है। लेकिन पूछताछ के बाद मथुरबाबू को पता चला कि यह बाजार से लायी हुई नहीं है, श्रीरामकृष्ण ने स्वयं अपने हाथों से इसे बनाया है। वे देख कर दंग रह गये!

श्रीरामकृष्ण देव की यह अद्भुत क्षमता थी कि कैसे वे अपने हाथों से बहुत सुन्दर मूर्तियाँ बनाते थे! विभिन्न आकृतियों को गढ़ते थे! ऐसा नहीं कि केवल नई-नई मूर्तियों को बनाने में ही उनकी निपुणता थी। उनकी निपुणता टूटी हुई मूर्तियों को बनाने में भी थी। इसका एक उदाहरण है।

राधाकान्त मंदिर में श्रीकृष्ण का विग्रह था। एक दिन पुजारी के हाथों किसी तरह गिरकर इस विग्रह का पैर टूट गया। रानी रासमणि के सामने बहुत बड़ी समस्या खड़ी हो गई कि अब इस विग्रह का क्या करें! उन्होंने पंडितों की एक बड़ी सभा बुलायी। उनसे राय माँगी, तो पंडितों ने एकजुट होकर कहा कि इस विग्रह को बदल दीजिये। रानी रासमणि को पंडितों का यह सुझाव रास नहीं आया। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को सारी घटना बताई और उनका मत पूछा। श्रीरामकृष्ण को पंडितों का सुझाव हास्यास्पद लगा। उन्होंने रानी रासमणि से पूछा, अगर आपके दामाद दुर्घटनाग्रस्त हो जायँ या उनका पैर टूट जाये, तो आप क्या करेंगी? अपने दामाद को बदल देंगी या उनकी चिकित्सा की व्यवस्था करेंगी? इस अत्यन्त समीचीन और युक्तिसंगत सुझाव को सुनकर सभी लोग दंग रह गये। सबने श्रीरामकृष्ण के सुझाव को स्वीकार किया। फिर प्रश्न उठा कि इस मूर्ति को ठीक कौन करेगा? श्रीरामकृष्ण ने स्वयं यह भार लिया। उन्होंने स्वयं अपने हाथों से उस मूर्ति को इतनी बारीकी से ठीक किया कि देखकर किसी को यह समझ में नहीं आयेगा कि टूटी हुई मूर्ति को किसी ने बनाया है। यह थी रामकृष्ण की निपुणता! उनमें नयी मूर्ति को गढ़ने की निपुणता तो थी ही, किन्तु टूटी-फूटी मूर्ति को भी अपने हाथों से ठीक करने की कुशलता थी।

अब विशेषता यह है कि गदाधर की मूर्तियाँ बनाने की यह कला परवर्ती काल में मनुष्य को गढ़ने की कला के रूप में रूपान्तरित हो जाती है। यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। बचपन में यह गदाधर जो मिट्टी के ढेले से नये-नये रूपों को गढ़ता था, वही गदाधर रामकृष्ण के रूप में परवर्ती काल में गुरुभाव में प्रतिष्ठित होने के पश्चात् मनुष्य को गढ़ने लगा, मनुष्य को बनाने लगा। श्रीरामकृष्ण के जीवन का यह बहुत ही सुन्दर अध्याय हमें देखने को मिलता है। इस सन्दर्भ में मैं आपको कुछ उदाहरण देता हूँ। एक उदाहरण है कालीपद घोष का। वे एक गृहस्थ थे। अत्यन्त दुराचारी थे। शायद ही ऐसा कोई कुकर्म हो, जो इन्होंने न किया हो – बहुत बड़े शराबी! हमेशा शराब के नशे में धुत रहने वाले। अपनी पतिव्रता पत्नी को सताने वाले! ऐसे कालीपद घोष एक दिन श्रीरामकृष्ण के समक्ष उपस्थित होते हैं। श्रीरामकृष्ण उनको देखकर सीधे कह देते हैं – क्या बारह वर्षों तक अपनी पत्नी को रुलाने के बाद अब मेरे पास आये हो? कालीपाद घोष एकदम आश्चर्यचकित हो जाते हैं कि यह बात श्रीरामकृष्ण को कैसे पता चल गयी! रामकृष्ण कहते हैं – कोई बात नहीं! बताओ तुम्हें क्या चाहिए? कालीपद घोष शराब के नशे में धुत थे। फिर भी हाथ जोड़कर श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना करते हैं कि क्या मुझे थोड़ी-सी शराब मिल सकती है? आसपास जितने भी भक्त लोग खड़े थे, वे बिल्कुल घृणा की दृष्टि से कालीपद घोष की ओर देखते हैं और सोचते हैं कि कैसा निर्लज्ज आदमी है! शराब के नशे में धुत है और श्रीरामकृष्ण के समक्ष आकर उनसे शराब माँगता है! लेकिन ठाकुर को क्रोध नहीं आया। ठाकुर ने सहास्यवदन उनसे कहा – ठीक है, मेरे पास है शराब, पीओगे? कालीपद घोष की आँखें बड़ी हो गईं। उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ कि ठाकुर स्वयं कह रहे हैं कि उनके पास शराब है! तो उन्होंने कहा, हाँ जरूर पीऊँगा । तब श्रीरामकृष्ण ने कहा, लेकिन तुम यह शराब पी नहीं पाओगे, यह इतनी नशीली है कि तुम इसे पचा नहीं पाओगे। तब कालीपद घोष ने उनसे पूछा – क्या यह अंग्रेजी माल है? श्रीरामकृष्ण कहते हैं, यह अंग्रेजी

शेष भाग पृष्ठ १४१ पर

साधुओं के पावन प्रसंग (३)

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी शंकरानन्द जी वृद्धावस्था में जब अधिकांश समय बिस्तर पर ही लेटे रहते थे, तब स्वामी गोकुलानन्द जी विद्यामन्दिर (सारदापीठ), बेलूड़ मठ से उन्हें नियमित समाचार-पत्र सुनाने जाते। उस समय महाराज के कुछ मूल्यवान वार्तालाप वे अपनी डायरी में लिखते थे। उसमें से अध्यात्मजीवन सम्बन्धी कुछ विषय यहाँ लिपिबद्ध किए गए हैं। ८ अगस्त, १९९० में दिल्ली में स्वामी गोकुलानन्द जी ने अपनी डायरी से ४१ पृष्ठ झेरोक्स कर मुझे दिए थे।)

बेलूड़ मठ, २९.०८.१९६०

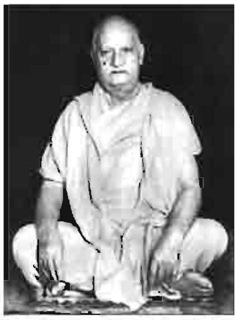

स्वामी शंकरानन्द

आज समाचार-पत्र में (बाहर के) किसी साधु के अनैतिक कार्य के लिए उन्हें जेल हुई है, यह खबर सुनकर महाराज ऊपर की ओर मुख कर गम्भीर स्वर में बोले, "साधु होना आसान नहीं है। गेरुआ पहनने से ही कोई साधु नहीं हो जाता। निरन्तर प्रार्थना के बिना महामाया के राज्य से सहज निस्तार पाना सम्भव नहीं है।"

प्रश्न – इस जीवन में ईश्वर-प्राप्ति करने की क्या आवश्यकता है?

महाराज – अपने आप पर खूब विश्वास रखना होगा। श्रीरामकृष्ण देव कहते थे कि जो पापी-पापी सोचता है, वह पापी हो जाता है। इस प्रकार सोचना होगा – हाँ, मैं इसी जीवन में ईश्वर-प्राप्ति करूँगा। ईश्वर-प्राप्ति करना और आत्म-साक्षात्कार करना एक ही बात है। 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति। आत्मविद् आत्मैव भवति।' चौरासी लाख योनि घूमने के बाद यह मनुष्य-जन्म प्राप्त होता है और इस मनुष्य-शरीर में ही ईश्वर-प्राप्ति होती है। इसलिए ऐसा दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर भी ईश्वर-प्राप्ति (के लिए प्रयत्न) नहीं किया, तो जीवन वृथा ही गया।

प्रश्न – इस प्रकार कार्य करते-करते (ईश्वर-प्राप्ति के लिए प्रयत्न) करना होगा अथवा केवल (exclusively) जप-ध्यान के द्वारा करना होगा?

महाराज – exclusively जप-ध्यान कितने लोग कर सकेंगे? इसलिए तो स्वामीजी इन सब सेवाकार्यों की व्यवस्था कर गए हैं। यदि ठीक भाव से यह किया जाए, तो इसके द्वारा भी हो सकता है। उसके लिए विश्वास होना चाहिए।

"एक प्रकार का कीड़ा होता है, जो केवल जन्मता है और मरता है। इस प्रकार कितने लोग जन्म ग्रहण करते हैं और मरते हैं।"

०१.०९.१९६०

महाराज – देखो, कितने लोग ऐसे होते हैं, जो केवल बकबक कर दूसरों को परेशान करते हैं। एक बार मैं स्वामी बोधानन्द जी के साथ मुम्बई में था। उनके अमेरिका जाने के पहले की यह बात है। प्रतिदिन भोजन के बाद एक व्यक्ति उनके पास आता और पूरी दोपहर उनसे बकबक करता। उसके आने से मैं खिसक जाता। एक दिन जब महाराज ने उससे छुटकारा पाने का उपाय पूछा, तब मैंने कहा, "देखिए, कल जब वह आएगा, तब आप उसकी बात पर केवल, 'हाँ', 'हं', 'इसीलिए' के अलावा और कुछ मत बोलिएगा। अगले दिन यथारीति वह भोजन के बाद फिर आया। मैं तो वहाँ से खिसक ही गया। स्वामी बोधानन्द केवल 'हाँ', 'हं', 'ऐसा' बोलते रहे और वह व्यक्ति एक घंटे बाद बोला, "तो आज चलता हूँ।" बस, उसके बाद वह कभी नहीं आया।

२५.०९.१९६०

महाराज – (किसी साधु की निष्ठा देखकर) साधु और ब्रह्मचारियों को इनसे सीखना चाहिए। कोई एक भाव लेकर रहना होगा। इसके अलावा कठोर साधना और तितिक्षा की आवश्यकता है। तितिक्षा का अर्थ जानते हो –

सहनं सर्वदुःखानां अप्रतिकारपूर्वकम्।
चिन्ताविलापरहितं सा तितिक्षा निगद्यते।।

(विवेकचूडामणि, २४)

– चिन्ता और शोक से रहित होकर बिना कोई प्रतिकार किए सभी प्रकार के कष्टों को सहन करना 'तितिक्षा' कहलाती है। यह सब केवल साधु ही कर सकते हैं। फिर भी आजकल देख रहा हूँ कि थोड़ी समस्या होते ही डॉक्टर, दवा इत्यादि। फिर हमारे साधुओं का तो बड़े-बड़े डॉक्टरों से सम्पर्क है, इससे और भी दुर्गति हो रही है।

२३.०३.१९६१

महाराज (किसी ब्रह्मचारी की दीक्षा के विषय में) – मैं

वचनामृत पढ़ने के लिए कहता हूँ। प्रतिदिन वचनामृत पढ़ने से ठाकुर सर्वदेवदेवीस्वरूप हैं, यह भाव आएगा। ठाकुर ही सब कुछ हैं। उन्हें 'पिता' 'माँ' जो इच्छा हो, वह बोलो।... एकत्व का ज्ञान ही ज्ञान है, अनेकत्व का ज्ञान अज्ञान है।

प्रश्न – आपको साधुजीवन की प्रेरणा सर्वप्रथम कहाँ से प्राप्त हुई?

महाराज – 'कौपीनवन्त: खलु भाग्यवन्त:' यह सुनकर। इसके बाद गुप्त महाराज (स्वामी सदानन्द) मुझे राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज) के पास ले गए। तब महाराज मठभवन के नीचे गंगा की ओर बेंच पर बैठे हुए थे। मुझे देखकर बोले, "तुम्हारा हाथ दिखाओ तो।" ऐसा कहकर उन्होंने हाथ का वजन देखा और कहा, "होगा, होगा – तुम्हारा होगा।

"उस समय स्वामीजी ऊपर से नीचे आए और ज्ञान महाराज के कमरे में आकर एक बेंच पर बैठे। उस समय वह कमरा पुस्तकालय था। उसके बाद गुप्त महाराज स्वामीजी के पैर दबाने लगे।"

प्रश्न – महाराज, आपने तो एक दिन मुझसे कहा था कि आप डॉक्टरी पढ़ते-पढ़ते साधु हो गए। वह कैसे हुआ?

महाराज – तब मैं गंगा-स्नान करता था। एक बार स्नान करने के लिए मठ में आ गया। घर के लोगों को पहले लगा कि मैं गंगा में डूब ही गया हूँ।

प्रश्न – आजकल काम-काज के कारण कभी-कभी सन्ध्या समय जितना जप-ध्यान करना चाहिए, उतना हो नहीं पाता और सन्ध्या के समय निष्ठा भी नहीं रहती। इससे मन में दुख होता है।

महाराज – कर्म को साधन-भाव से करना चाहिए। जब कुछ काम नहीं होगा, तब जैसे नियमपूर्वक करते हो, वैसे करना। हमारे ध्येय-वाक्य में ही ज्ञान, कर्म, भक्ति और योग है। इन सबका समन्वय कर हमें जीवन गढ़ना होगा।

प्रश्न – दिन में ठूँस कर खाना माने क्या?

महाराज – अर्थात तीन भाग पेट-भर खाना। एक भाग वायु संचरण के लिए सब समय खाली रखना चाहिए।

०१.०४.१९६१

देहबुद्धि का नाश कर गंगाप्राप्ति के विषय में महाराज ने गंगाष्टकम् का तृतीय श्लोक उद्धृत कर कहा,

काकैर्निष्कुषितं श्वभिः कवलितं गोमायुभिर्लुण्ठितं
स्रोतोभिश्चलितं तटाम्बुलुलितं वीचीभिरान्दोलितम्।

– मृत्यु के बाद स्वर्ग जाते समय मैं कब अपने शरीर को गंगाजल में कौओं द्वारा चोंच मारते हुए, कुत्तों के द्वारा भक्षण करते हुए, गीधों के द्वारा विध्वस्त होते हुए, जलसमूह में प्रवाहित होते हुए, तटबन्धों पर इतस्तत: टकराते हुए और तरंगों पर आन्दोलित होते हुए देखूँगा?

"इसका अर्थ है कि इस देहबुद्धि का त्याग करना है। देह कुछ भी नहीं है। इस देह के भीतर जो हैं, उनकी खोज करनी है।

"गंगास्तोत्र में और एक स्थान पर है, मातर्गङ्गे त्वयि यो भक्त: किल तं द्रष्टुं न यम: शक्त:, अर्थात् माँ गंगे! जो तुम्हारा भक्त है, उसे यम भी देखने में असमर्थ है, अर्थात् वह अमर है।

"यह किस प्रकार सम्भव है? क्योंकि ठाकुर बोलते थे, गंगावारि ब्रह्मवारि। इसके अलावा वृन्दावन की रज को कहते थे – ब्रह्मरज और जगन्नाथ का महाप्रसाद, ब्रह्मअन्न – अन्नब्रह्म।

"पहले शिव के सभी स्तोत्रों को पढ़ना शुरू करो। मजे की बात यह है कि तुम देखोगे, दो-तीन बार पढ़ने से ही मुखस्थ हो जाएँगे। मैं इस समय जो इतना कुछ बोलता हूँ, इसका कारण यह है कि ये सब स्तोत्र मुखस्थ थे। बीच-बीच में अटक जाता हूँ।"

ऐसा कहकर उन्होंने शिवमहिम्न: स्तोत्र के पहले दो श्लोक बोले। उसके बाद कहा, "१९१२ में कनखल में हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) से शिवमहिम्न: स्तोत्र का अर्थ समझ लिया था।

"राजा महाराज कभी-कभी भुवनेश्वर मन्दिर में जाते और प्रणाम करने के उपरान्त किसी एकान्त स्थान में बैठ कर मुझसे कहते, 'कोई स्तोत्र पाठ करो।' एकबार मैंने शिवमहिम्न: स्तोत्र का पूरा पाठ किया। कहीं पर अटका नहीं, पूरा पाठ कर दिया।

"महाराज सहज ही अपने मन को ऊपर उठा लेते थे। इसलिए जब स्तोत्रपाठ अथवा रामनाम सुनते, तब एक ही आसन पर धीरभाव से बैठकर सुनते रहते।"

इसके बाद महाराज साधुजीवन के गठन के बारे में बोले, "देखो साधु होने से सब कुछ नहीं हो जाता, मैंने देखा है कि २४-२५ वर्ष, यहाँ तक कि ४० वर्ष बिताने के बाद भी साधु बिगड़ जाता है। सब समय मन को भगवत्-चिन्तन

शेष भाग पृष्ठ १३७ पर

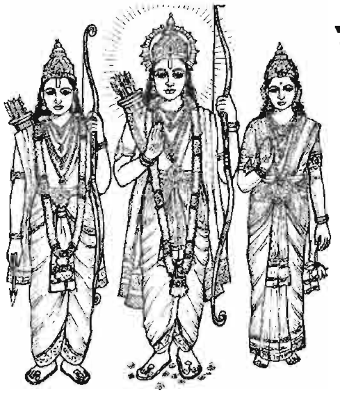

यथार्थ शरणागति का स्वरूप (६/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

गोस्वामीजी कहते हैं –

लखन राम सिय कानन बसहीं। २/३२५/२

भगवान श्रीराम सीता और लक्ष्मण तो वन में रह रहे हैं और श्रीभरत जी क्या कर रहे हैं? –

भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं।। २/३२५/२

भरत रह रहे हैं भवन में, पर कर क्या रहे हैं? तप तनु कसहीं – तपस्या की कसौटी पर शरीर को कसकर देख रहे हैं। बड़ी अनोखी बात कही गई। इसका अभिप्राय क्या है? इस स्थिति को पा लेने के बाद अब और कसने की आवश्यकता है क्या? एक बार जिसने सर्वोच्च स्थिति प्राप्त कर ली, तब फिर क्या कसना? आप किसी सर्राफ के यहाँ सोना ले जाते हैं और वह आपके सोने को कसौटी पर कसकर देखता है। भक्त लोग कहते हैं न ! किसी ने पूछ दिया कि भगवान का रंग श्याम क्यों है? तो गोस्वामीजी ने तुरन्त कहा कि जब सर्राफ के पास सोना बेचने जाते हैं, तो वह जिस कसौटी पर कसकर देखता है, वह भी काला ही होता है। भगवान का श्याम रंग चित्त के सोने को कसने के लिए कसौटी है।

स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहों ।

चित्त के सोने को श्याम रंग की कसौटी पर कसकर देखना। किसी ने पूछ दिया कि लक्ष्मणजी का रंग स्वर्णिम क्यों है? गोस्वामीजी का संकेत यह है कि सर्राफ के यहाँ अगर आप जाएँगे, तो आप जो सोना लेकर गये हैं, उसको तो वह कसौटी पर कसेगा। पर साथ-साथ वह अपनी पेटी से भी एक सोना निकालेगा और बगल में उससे भी एक रेखा खींचेगा और दोनों को मिलाकर देखेगा, तब कहेगा कि सोना कितना खरा है। भगवान राम के पास भी जब कोई चित्त का सोना लेकर जाय, तो जो परखा हुआ सोना लक्ष्मण है, उससे मिलाकर वे देखते हैं कि सोना खरा है कि नहीं। यदि ऐसा चित्त है, तो ठीक है, नहीं है तो खरा नहीं है। तो भई, सोना तो एक बार कसा जाता है, पर धन्य हैं, श्रीभरत ! श्रीभरत तो अद्वितीय हैं ! वे सोना भी हैं और कसौटी भी हैं।

ऐसा अद्वितीय चरित्र तो आपको मिलेगा ही नहीं। श्रीभरत का रंग श्याम है, तो कसौटी हैं। श्रीभरत के चरित्र का वर्णन करते हुये महाराज श्रीजनक कहते हैं –

सुनि भूपाल भरत ब्यवहारू।
सोन सुगंध सुधा ससि सारू।। २/२८७/१

ऐसा दिव्य स्वर्ण तो विश्व में हुआ ही नहीं। श्रीभरत की कसौटी पर आप चाहें, तो अपने को कस कर देख लें। स्वयं श्रीभरत का चरित्र ही वह दिव्य स्वर्ण है, ऐसा दिव्य, ऐसा महान, जिनके लिये कोई शब्द नहीं ढूँढ़ा जा सकता।

जब वे कसकर देखते रहते हैं, तो मानो उसका तात्पर्य यह है कि यह जो जीवन पथ है, उसमें सिद्ध को भले ही इसकी आवश्यकता न हो, पर लोक साधना के लिए, लोक कल्याण के लिए आवश्यक है। क्योंकि एक बहुत बड़ी समस्या यह है कि साधक बड़ी सरलता से अपने आप को सिद्ध मानने की भूल कर बैठता है। यह बहुत बड़ी भ्रान्ति है। यह भ्रान्ति अगर किसी के जीवन में आ जाय, तो वह बड़े संकट में फँसेगा। मान लीजिए, एक क्षण में कोई प्रलोभन आकृष्ट नहीं कर पाया, कोई सौन्दर्य आकृष्ट नहीं कर पाया और व्यक्ति ने यह प्रमाण पत्र दे दिया कि स्वर्ण आकृष्ट नहीं कर पाया, तो मैं निर्लोभी हूँ, सौन्दर्य आकृष्ट नहीं कर पाया, तो मैं निष्काम हूँ, तो यह तो उचित निर्णय नहीं है। इसीलिए महापुरुषों के जो चरित्र हैं, उसके द्वारा सावधान करने की चेष्टा की गई है। भई, नारदजी ने अप्सराओं का नृत्य देखा, उनके मन में कोई आकर्षण नहीं हुआ। नारदजी ने स्वर्ग का भी लोभ नहीं किया। पर जब अभिमान हो गया, तो प्रभु ने एक कौतुक कर दिया। क्या? जब उन्होंने विश्वमोहिनी के रूप को देखा, तो कहाँ गई वह

निष्कामता? कहाँ गई वह वृत्ति? वे इतने व्याकुल हो गये कि भगवान से बाद में उन्होंने कहा, महाराज, अगर विवाह बुरा है, तो आप किसी का विवाह न होने देते, तो समझ में आता। मेरे विवाह में ऐसी क्या बुराई थी, जिसे आपने रोकने की चेष्टा की। भगवान ने यही कहा कि नारद, संसार में बहुत-से लोग जब विवाह नहीं होता है, तो बेचैन होते हैं। सोचते हैं कि ऐसा जप करें, ऐसा पाठ करें, जिससे विवाह हो जाय। कन्या के विषय में तो ऐसा प्रश्न लोग किया ही करते हैं। एक बार एक माताजी ने कहा, वहाँ पर तो संकोच नहीं होता। कई बार तो पुत्र के लिये भी वही प्रश्न होता है कि क्या करें कि कन्या उपयुक्त मिले। भगवान ने हँसकर कहा, नारद विषयी लोग तो पत्नी पाने के लिए जप करते हैं, साधन करते हैं, पर तुमने जो सुन्दरता देखी और तुमने जो निर्णय किया, वह तो एक ही है। –

जप तप कछु न होइ तेहि काला।

हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला।। १/१३०/८

यह माला और तपस्या सब एक ओर गया, अब तो यह सुन्दरी कैसे मिले ! तो भगवान का अभिप्राय यह है कि जीवन हमेशा एक समान नहीं रहता है। जैसे शरीर है, ऐसा तो नहीं होता कि आज आप स्वस्थ हैं, तो आप मान लें कि हम कभी अस्वस्थ नहीं होंगे और निश्चिन्त हो गये। अगर मन का स्तर है, बुद्धि का स्तर है, तो वहाँ आप यह कैसे मान लेते हैं कि अब वहाँ इस प्रकार की कोई सम्भावना है ही नहीं। मानो श्रीभरत के चरित्र के द्वारा यह समझाने की चेष्टा की गई कि इसको तो निरन्तर कसते ही रहना चाहिए, सतत परीक्षण होते ही रहना चाहिए। ऐसा तो कभी होना ही नहीं चाहिए कि व्यक्ति यह मान ले कि अब मैं परिपूर्ण हो गया। पूर्ण एकत्व होते हुए भी, तत्त्वत: सत्य होते हुए भी, मन के स्तर पर, बुद्धि के स्तर पर, जब रहें, तो इसे सतत कसकर देखते रहना चाहिये।

थोड़ा यह गम्भीर विषय है। जब यह कहा गया कि – **सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा,** तो वृत्ति अखण्डा कहने का तात्पर्य है कि कोई वृत्ति है, मान लीजिए, आप राम नाम का जप न करें, कई लोग सोऽहम्-सोऽहम् यही जप किया करते हैं, पर इस सोऽहम् में भी जब अखण्डता की वृत्ति बनी रहे, तभी तो उसकी सार्थकता है। किसी भी वृत्ति का अखण्ड बने रहना, यह एक बड़ा ही विलक्षण कार्य है। जो व्यक्ति सिद्ध होता हुआ भी साधक के रूप में अगर अपने व्यवहार को देखे, समझे, तो वह बहुत बड़ी महानता है। अगर आप भगवान श्रीरामकृष्ण की जीवनी पढ़ें, तो वहाँ बड़ी अद्‌भुत बात है। वे स्वयं ईश्वर के अवतार हैं, पर वे विविध प्रकार की साधनाएँ करते हैं। साधनाओं के विषय में तो कभी-कभी दूसरों से प्रश्न करते हुए भी दिखाई देते हैं कि ऐसा जो मुझे दर्शन हुआ, वह सही है कि क्या है, और कोई अगर कह देता, तो सचमुच उस पर विचार करने लग जाते थे। उसका तात्पर्य यह है कि जब अवतार लेकर, ईश्वर होकर भी उस पर विचार करते हैं, वे जो सिद्ध और स्वयं भगवान के रूप में है और बार बार अपनी साधनाओं को परखते हैं, तो वह साधकों को शिक्षा देने के लिए है।

भगवान राम ने श्रीसीताजी की सुन्दरता को पुष्पवाटिका में देखा और देखते ही उन्हें अद्‌भुत आकर्षण का अनुभव हुआ। भगवान राम ने साक्षात् ईश्वर होते हुए भी लक्ष्मण से यह प्रश्न किया –

सिय सोभा हियँ बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि।

बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि।। १/२३०

प्रभु ने लक्ष्मणजी की ओर देखा। लक्ष्मणजी तो उस वाटिका के श्रृंगार में कहीं हैं ही नहीं। लक्ष्मणजी से प्रभु कहते हैं –

तात जनकतनया यह सोई।

धनुषजग्य जेहि कारन होई।।

पूजन गौरि सखीं लै आईं।

करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं।।

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा।

सहज पुनीत मोर मन छोभा।। १/२३०/१-३

हे तात ! यह जनकनन्दिनी है, जिसके लिये यह धनुष-यज्ञ हो रहा है, उसकी अलौकिक सुन्दरता को देखकर मेरे परम पवित्र मन में भी क्षोभ उत्पन्न हुआ है, ऐसा मैं अनुभव करता हूँ। क्यों कहते हैं? मानो संकेत यह है कि लक्ष्मण तुम्हारा मन जितना अडिग दिखाई दे रहा है, मुझे तो अपने आप पर कुछ संदेह हो रहा है और कहते हैं –

जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी।

नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी।।

मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं।

ते नरबर थोरे जग माहीं।। १/२३०/७,८

आज क्या हो गया है ! सौन्दर्य देखकर इस तरह का राग मेरे मन में कभी उदित नहीं हुआ। मानो साक्षात् ईश्वर अपने मन को लक्ष्मण के न्यायालय में खड़ा कर देता है कि

अब तुम प्रमाण दो। लक्ष्मणजी ने ऐसी चुप्पी साधी कि बोल ही नहीं रहे हैं। मानो लक्ष्मणजी आनन्द ले रहे हैं। अब प्रभु पूछ रहे हैं, तो क्या लक्ष्मण प्रमाण पत्र देंगे कि आपका मन अच्छा है? गोस्वामीजी ने बड़ी बात लिखी। लक्ष्मण दिनभर चुप रहे और रात्रि में भी प्रभु की सेवा की, पर बोले नहीं। पर प्रात:काल होते ही प्रभु ने लक्ष्मण से पूछा –

उयउ अरुन अवलोकहु ताता।
पंकज कोक लोक सुखदाता।। १/२३७/७

लक्ष्मण जरा देखो सूर्य निकल आया न ! इतनी देर पूरी पुष्पवाटिका के बाद प्रभु थोड़ा चिंतित ही रहे कि मैंने अपने मन की दशा लक्ष्मण से कह दी, पर लक्ष्मण ने कुछ नहीं कहा, क्या कारण है? पर लक्ष्मणजी ने कहा – प्रभु सूर्य तो निकल आया है, पर दूसरे सूर्य की आवश्यकता है। इस धनुष के अन्धकार को दूर करने की शक्ति इस सूर्य में नहीं है। जब आपकी भुजा का सूर्य उदित होगा, तभी यह अन्धकार दूर होगा। यह बड़ा सांकेतिक वाक्य है। प्रभु ने एक शब्द कह दिया था न ! हमारे रघुवंश की यह परम्परा रही है कि –

नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी।। १/२३०/७

वे श्रृंगारिक भावना से परस्त्री की ओर कभी दृष्टि नहीं उठाते। लीला में तो श्रीसीताजी से उनका विवाह नहीं हुआ है। भगवान ने पूछा कि क्या मेरा यह कार्य अनौचित्यपूर्ण नहीं है? उस समय तो लक्ष्मणजी कुछ बोले नहीं, पर अब बड़ी दार्शनिक भाषा में उत्तर दिया। प्रश्न करनेवाला और उत्तर देनेवाला, दोनों ही अद्वितीय थे। लक्ष्मणजी ने जब यह कहा कि धनुष जो है, वह अन्धकार है और आपकी भुजा सूर्य है। मानो प्रश्न यह था कि तुमने धनुष की तुलना अन्धकार से की होगी, तो इसका कोई तात्पर्य होगा? लक्ष्मणजी ने कहा – प्रभु, अन्धकार और प्रकाश में, वस्तु परिवर्तित नहीं होती। अन्धकार में जो वस्तु जैसी होती है, वह प्रकाश में भी वैसी ही होती है। अन्तर केवल इतना है कि अन्धकार में वस्तु दिखाई नहीं देती और प्रकाश में ठीक-ठीक दिखाई देती है। मैंने धनुष को अन्धकार इसलिए कहा कि धनुष टूटने के बाद विवाह नहीं होना है। धनुष के अन्धकार के कारण वह विवाह दिखाई नहीं दे रहा है। वह टूटेगा, तो लोगों को वह विवाह दिखाई देने लगेगा। वह कोई परतिय नहीं है, वह तो आपकी अनादिनिजतिय है, आपका विवाह तो अनादि है। इसलिए आप यह जो संदेह कर बैठे कि 'नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी', वह स्थिति यहाँ नहीं है। यहाँ तो वह दिव्य, वह शाश्वत विवाह है, जब कृपा करके आप धनुष तोड़ देंगे, तो लोगों को भी दिखाई देगा। गोस्वमीजी ने लिखा है –

बंधु बचन सुनि प्रभु मुसुकाने। १/२३८/७

अब होठों पर हँसी आई, प्रभु मुस्कुराये।

होइ सुचि सहज पुनीत नहाने ।। १/२३८/७

मानो प्रभु कह रहे हैं कि लक्ष्मण, तुमने ऐसा कहा है, तो तुम्हारी बात तो प्रामाणिक ही होगी। तुम ठीक ही तो कह रहे हो। इसके बाद शतानन्दजी का दूत आया और कहा, महाराज जनक बुला रहे हैं। विश्वामित्रजी ने श्रीराम से कहा –

सीय स्वयंबरु देखिअ जाई ।
ईसु काहि धौं देइ बड़ाई।। १/२३९/१

राघवेन्द्र, चलो, सीताजी का स्वयम्वर देख आएँ। पता नहीं, ईश्वर किसको बड़ाई दे। बड़ी सांकेतिक भाषा थी, लेकिन शब्द यही था – पता नहीं, ईश्वर किसको बड़ाई दे। लक्ष्मणजी से नहीं रहा गया। उन्होंने कितना सुन्दर उत्तर दिया, मानो लक्ष्मणजी ने स्वीकार कर लिया कि भगवान राम तो गुरुदेव के समक्ष हैं और निष्कर्ष तो गुरु के द्वारा ही प्राप्त होता है। गुरुजी कह रहे हैं कि पता नहीं, ईश्वर किसको बड़ाई दे। लक्ष्मण धन्य हैं ! ऐसा वाक्य कह दिया कि भगवान और गुरु, दोनों के लिये उसमें स्तुति है। **(क्रमश:)**

पृष्ठ १०५ का शेष भाग

रहते हैं तथा दूसरों को भी शान्ति प्रदान करते हैं। मानसिक अशान्ति तो उन्हें होती है, जो अपने विषय में ही सोचते रहते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं –

परहित बस जिन्ह के मन माहीं।
तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।[६]

अर्थात् जिनके मन में दूसरों का हित बसता है, उनके लिए जग में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। ○○○

सन्दर्भ – १. विवेकानन्द साहित्य ४/२६५, **२.** महाभारत, वन पर्व, १००/२१, **३.** भगवद्गीता ६/४०, **४.** विवेकानन्द साहित्य ३/६०-६१, **५.** विवेकानन्द साहित्य ३/४९-५०, **६.**रामचरितमानस, अरण्य काण्ड

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (१५)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

टोकरा स्वामी

मेरे जामनगर पहुँचने के कुछ वर्ष पूर्व वहाँ 'टोकरा स्वामी' नामक एक दक्षिणी परमहंस निवास करते थे। मुझे उनका एक चित्र भी देखने को मिला था। जामसाहब उनके अनुरागी थे।

वे स्वामीजी अद्वैतवादी होकर भी प्रतिदिन लगभग तीन बजे तक पूजा-अनुष्ठान आदि में लगे रहते थे। एक विद्वान् ने एक बार उनसे पूछा था, "आप अद्वैतवादी परमहंस होकर भी इस प्रकार प्रतिदिन हर तरह के उपचारों के साथ बाह्य पूजा क्यों करते हैं?" उसके उत्तर में उन परमहंस ने जो कुछ कहा, उसी श्लोक को यहाँ लिपिबद्ध करता हूँ –

विश्वेश्वरे च सुधिया गलितेऽपि भेदे
भावेन भक्तिसहितेन समर्चनार्हः ।
प्राणेश्वरे तु चतुर्या मिलितेऽपि चित्ते
वस्त्राञ्चलैर्व्यवहितोऽपि निरीक्षणीयः ।।

इसका भावार्थ इस प्रकार है – जैसे पति-पत्नी के बीच सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ हो जाने (अर्थात् चित्त में मिलित हो जाने) के बावजूद जैसे पत्नी बीच-बीच में घूँघट की ओट से पति को देख लेती है, वैसे ही जीवात्मा-परमात्मा के बीच भेदबुद्धि दूर हो जाने पर भी, ज्ञानी व्यक्ति के लिये वे परमात्मा पूजा के ही योग्य हुआ करते हैं।

वीरभजन, कल्याणजी और बेचूरो बाई

जामनगर में वीरभजन शिव, बेचूरो बाई देवी तथा कल्याणजी का विष्णुविग्रह प्रमुख हैं। वीरभजन शिवलिंग हैं और उनका मन्दिर काफी विशाल है। प्रतिदिन संध्या के समय जामनगर के बहुत-से नर-नारी उनका दर्शन करने जाते हैं। प्रतिवर्ष सावन के महीने में कई सोमवारों के दिन अपराह्न में उनके विविध प्रकार के अत्यन्त सुस्वादु भोज्य-पदार्थों का विराट् भोग देखकर विस्मय-विमुग्ध रह जाना पड़ता है। महादेव के ऐसे भोग की व्यवस्था अन्यत्र कहीं भी मेरे देखने में नहीं आयी। वह जो विराट् आयोजन होता है, उसे भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। कल्याणजी की काले पत्थर से निर्मित अत्यन्त सुगढ़ित मूर्ति है। प्रातःकाल दर्शनार्थियों की काफी भीड़ होती है।

बेचूरो बाई देवी का एक छोटा-सा मन्दिर है और उसमें माँ की प्रतिमा भी छोटी-सी है। प्रतिदिन सायंकाल बहुत-से स्त्री-पुरुष माँ के आंगन में खड़े होकर भक्ति-गद्‌गद-चित्त के साथ एक प्रार्थना-सूचक गीत गाते हैं। उस गीत की दो-एक पंक्तियाँ ही मेरी भावनाओं को उद्वेलित करने के लिये पर्याप्त थीं। वह अंश इस प्रकार है –

बेचरो बाई रे ! हूँ जेवो ना तेवो, छूँ तुमारो ।।

– अर्थात् "हे बहुचरा बाई,[१] मैं जैसा भी क्यों न होऊँ, पर तुम्हारा ही हूँ।" अहा, यह पंक्ति याद आने पर आज भी मेरे हृदय में जिस पवित्र भाव का उदय होता है, उसे शब्दों में लिखकर प्रकट नहीं कर सकता।

पेट का रोग तथा चिकित्सा

काठियावाड़ अंचल के लोग बहुत अधिक घी के साथ भोजन करने के अभ्यस्त हैं। वे लोग चुरमा लड्डू खिलाना बड़ा पसन्द करते हैं। इस अल्प-स्वल्प घी से युक्त आहार के कारण मुझे पेट का रोग हुआ। ज्ञात होने पर मणिशंकरजी ने मेरे लिये एक महीने तक सुश्रुतोक्त 'सर्वोपघात-शमनीय रसायन' के सेवन की व्यवस्था कर दी।

वहाँ के वैद्य लोग औषधि का प्रयोग करने के पहले रेचन, वमन, स्वेदन, वस्तिकरण आदि षट्कर्मों की व्यवस्था करते हैं। परन्तु मुझे केवल रेचन (जुलाब) दिया था। उस चिकित्सा की व्यवस्था में मुझे प्रतिदिन सुबह गुरुचि (गुलंच) के काढ़े के साथ आधा तोला मुलैठी तथा विडंग-तण्डुल चूर्ण खाने के बाद कई दस्त होते थे। सामलक-मुद्गयुष (सूखे आँवले के साथ खड़ी मूँग को एक साथ उबालकर बिना

१. काठियावाड़ प्रदेश के पुरुषों को 'भाई' और महिलाओं को 'बाई' कहते हैं।

नमक डाले) निचोड़कर उचित मात्रा में घी मिलाकर लाल चावल के भात के साथ दिन में एक बार खाना पड़ता था ।

चरक-सुश्रुत आदि में लिखा है, ''रक्तशाली महाशाली पथ्यमत्वे श्रेष्ठतम: ।'' उसमें नमक तक नहीं रहता था । अलोना घी-मिश्रित भात खाने में अच्छा नहीं लगता था । परन्तु एक पखवारे से भी अधिक उसी प्रकार भोजन करने के बाद थोड़ा नमकीन स्वाद मिलने लगा । इसी तरह की औषधि तथा पथ्य का मैंने करीब एक महीने तक सेवन किया था ।

मैं जब जामनगर गया था, तब मणिशंकरजी के बड़े भाई विख्यात वैद्य झण्डू भटजी जामसाहब की चिकित्सा के सिलसिले में बाहर गये हुए थे । वे मुझे देखने आये और बोले कि और भी एक महीने उसी प्रकार की औषधि तथा पथ्य जारी रखने से अच्छा होगा ।

नागर ब्राह्मण

भट्टजी लोग छह भाई थे । वे लोग प्रश्नओरा नागर थे । नागर ब्राह्मणों का थोड़ा-सा परिचय देता हूँ । नागर ब्राह्मणों की तीन श्रेणियाँ ही उल्लेखनीय हैं – वर्णओरा, प्रश्नओरा तथा विष्णुओरा ।

वर्णओरा तथा विष्णुओरा ब्राह्मण लोग प्राय: ही देशी राज्यों तथा सरकार के उच्चश्रेणी के कर्मचारी थे । प्रश्नओरा नागर ब्राह्मणों में उच्च कोटि के वैद्य, विद्वान् तथा पुरातत्त्वविद् पाये जाते हैं । पुरातत्त्ववेत्ताओं में भगवानलाल इन्द्रजी का नाम सुविख्यात है । बम्बई में जिन प्रसिद्ध वैद्यराज के साथ मेरा परिचय हुआ था, उनका नाम अब मुझे याद नहीं है ।

जामनगर में दो प्रकार के ब्राह्मण हैं । एक मुष्टिभिक्षा लेकर जीवन-धारण करते हैं । ये लोग भिक्षुक ब्राह्मण हैं । इन लोगों की संख्या करीब पाँच हजार है । दूसरे प्रकार के सम्पन्न (संगतिपन्न) गृहस्थ हैं । मजे की बात यह है कि भिक्षुक श्रेणी के ब्राह्मण सम्पन्न हो जाने पर भी भिक्षा अवश्य करते हैं ।

नागर ब्राह्मणों के विषय में एक श्लोक प्रचलित है –

नाग-नागरयोर्मध्ये वरं नागो न नागर: ।

नागो दंशति कालेन नागरस्तु पदे पदे ।।

अर्थात् ''नाग तथा नागर के बीच नाग ही अच्छा है, क्योंकि नाग तो कभी-कभार ही काटता है, परन्तु नागर पग-पग पर काटता है ।''

बाबूभाई वैद्य

मैं धन्वन्तरी-धाम में जब 'सर्वोपघात-शमनीय रसायन' का सेवन कर रहा था, उस समय बीच-बीच में उदयपुर के महाराणा के राजवैद्य बाबूभाई वैद्य मेरी सस्ती काष्ठौषधि का सेवन बन्द कराकर अपनी सुवर्ण-पर्पटी दवा के सेवन के लिये विशेष रूप से अनुरोध करते ।

वे एक विख्यात रसवैद्य थे । पारदघटित औषधियों के प्रयोग से वे असाध्य रोगियों को भी नीरोग कर देते थे । चरक-सुश्रुत में पारदघटित औषधियों का उल्लेख न देखकर मैंने उनका सेवन करने से मना कर दिया । चरक-सुश्रुत में लौह, स्वर्ण, माक्षिक आदि धातुओं का प्रयोग है तथा उपधातु मन:शिला का भी उल्लेख देखने को मिलता है । 'रसेन्द्र-चिन्तामणि' का नाम भी अपेक्षाकृत आधुनिक है । वैद्यकी ग्रन्थों में उसका काफी उपयोग हुआ है । वह तांत्रिक ग्रन्थ है । आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने नागार्जुन को ही रसायन के सबसे प्रधान आचार्य के रूप में प्रस्तुत किया है ।

सेठजी के घर आगमन

मणिशंकर स्वयं को 'रसेश्वराचार्य' कहकर अपना परिचय दिया करते थे । वे प्रतिदिन एक पारदलिंग की पूजा किया करते थे । पारे के वे बड़े भक्त थे और पारे को ही वे ब्रह्म कहा करते थे । उनके पास इन चार महीनों के दौरान मेरा चरक तथा सुश्रुत पढ़ना पूरा हुआ । मैंने थोड़ा-बहुत वागभट्ट तथा भावप्रकाश का भी अध्ययन किया ।

दो-तीन महीने वहाँ रहने के बाद शंकरजी सेठ (बैंकर) प्राय: ही मेरे पास आया करते थे । वे विख्यात धनवान तथा दाता थे । एक महीने से भी अधिक काल तक सुश्रुत-कथित दवा के सेवन के फलस्वरूप मुझे अतिशय दुर्बल देखकर वे मुझे अपने घर ले गये । वहाँ मैंने दोपहर में दूध-भात और रात में केवल दूध पीते हुए चार महीने निवास किया ।

प्रकाशन के उपयुक्त न होने पर भी मुझे बाध्य होकर एक देशाचार के विषय में विस्तार के साथ सब कुछ लिखना होगा । इससे यदि जरा-सा भी अनौचित्य प्रकट होता हो, तो मैं इसके लिये पाठकों से क्षमा चाहूँगा ।

रात में झण्डू भटजी के घर से सेठजी के घर आते समय मार्ग में दोनों तरफ जो देखने को मिलता, उसे कहते या

शेष भाग पृष्ठ १३९ पर

श्रीगुरुनानक देव तथा श्रीरामकृष्ण देव

ए. पी. एन. पंकज, चंडीगढ़

(अल्हाबादिया प्राणनाथ पंकज जी को पाठकवृन्द ए. पी. एन. पंकज के नाम से भी जानते हैं। संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी एवं अंग्रेजी आध्यात्मिक साहित्य में इनका गहन अध्ययन है। इनकी रचनाएँ 'वेदान्त केसरी' एवं अन्य पत्रिकाओं में भी प्रकाशित होती रहती हैं। रामकृष्ण मठ, चेन्नई से प्रकाशित 'गोस्वामी तुलसीदास' पुस्तक के अलावा इन्होंने 'चण्डीपाठ' पर भी एक पुस्तक लिखी है, जिसका प्रकाशन मोतीलाल बनारसीदास द्वारा हुआ है। – सं.)

''यदि हमारी मित्रता देश और काल – स्थान और समय – में सीमित है, तब तो हम उस स्थान, उस समय के निकल जाने पर अपने बन्धुत्व को समाप्त कर बैठेंगे। स्थान का अतिक्रमण कर लें, तो जो रहता है, वह है यहीं, समय का अतिक्रमण कर लें, तो जो रहता है, वह है अभी और क्या तुम्हें नहीं लगता कि इस यहीं और अभी (की निरन्तरता) में हमारा मिलन यदा-कदा होता रहेगा।''[१]

प्रस्तुत निबन्ध के सन्दर्भ में यदि उपरोक्त कथन की व्याख्या की जाये, तो हम यह कहेंगे कि देश और काल – समय और स्थान की अवधारणाएँ अथवा सीमाएँ हम जैसे सामान्य लोगों को ही सीमित करती हैं। इन्हीं सीमाओं में हमारा अस्तित्व, हमारे सम्बन्ध, हमारा व्यवहार, हमारे संयोग-वियोग, सुख-दुख, हानि-लाभ, जन्म-मरण के क्रिया-कलाप सम्पादित होते हैं। परन्तु जिन महापुरुषों, दिव्य विभूतियों, अवतार-पुरुषों ने सर्वत्र आत्मैक्य का अनुभव किया हो, आत्मा की सर्वव्यापकता का दर्शन किया हो, वे देश-काल की सीमा से परे होते हैं। शताब्दियों के अन्तराल, राज्यों, प्रान्तों और प्रदेशों की सीमाएँ आत्मा के इन अपरोक्षकर्ता महात्माओं के लिए निरर्थक होती हैं। उनके नेत्र इन सीमाओं से परे के अपने बन्धुओं को देख लेते हैं, उनकी वाणी इन मित्रों से वार्तालाप करती है, अपने दिव्य आध्यात्मिक जीवन और सन्देश के द्वारा वे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्राणिमात्र का पथ-प्रदर्शन करते हैं। उनका जीवन चिर जीवन है – व्यष्टि से व्यष्टि तक, व्यष्टि से समष्टि तक, समष्टि के अन्तरतम तक भी। उनके शब्द अनन्त आकाश में आपस में मिलते रहते हैं।

दिव्य आविर्भाव (१) : तलवंडी में नानक

लौकिक दृष्टि से बात करें, तो आज से लगभग ५४९ वर्ष पूर्व विक्रमाब्द १५२६, ईसवी सन् १४६९ कार्तिक मास (अक्टूबर-नवम्बर) की पूर्णिमा[२], स्थान – वर्तमान पाकिस्तान के पंजाब के लाहौर से चालीस मील दक्षिण-पश्चिम में, राय-भोए की तलवंडी, जिसे अब ननकाना साहिब कहते हैं, में श्रीगुरु नानक देव जी का जन्म हुआ। ह्यु मैकलिओड लिखते हैं –

गुरमत – गुरु के सिद्धान्त के अनुसार, ''परमात्मा, जो आदि गुरु हैं, ने अपना सन्देश अपने प्रिय शिष्य नानक को दिया, जिन्होंने अपनी अन्त:प्रज्ञा द्वारा दैवी आत्मा को ग्रहण किया और उसी के द्वारा उन्होंने उस (संदेश) के अभिप्राय को आत्मसात् किया और स्वयं गुरु हुए।''[३]

गुरु नानक से सम्बन्धित जन्म-साखियों के अनुसार, ब्रह्मवेला में जब नानक का आविर्भाव हुआ, तब एक अनुपम वातावरण की सृष्टि हुई थी। जिस स्थान पर जन्म हुआ, वह प्रकाश से भर उठा। जिस धाय के हाथों जन्म हुआ, उसने बताया – मेरे हाथों अनेक बालक हुए हैं, पर ऐसा अलौकिक बालक मैंने पहले कभी नहीं देखा ...। मैंने रहस्यमयी तथा आनन्दवर्द्धक ध्वनियाँ सुनीं...। साधारण बालक जन्म लेते समय रोते हैं, पर इस बालक के मुखमंडल पर मुस्कान है। इसके शीश के चारों ओर एक प्रभामंडल है।

कुल पुरोहित हरदयाल ने भविष्यवाणी की – हिन्दू और तुर्क समान रूप से इसका आदर करेंगे। इसका नाम पृथ्वी और स्वर्ग में प्रसिद्ध होगा। सूर्य की भाँति इसका प्रकाश चमकेगा। जन्मस्थल इसकी स्तुति से भर जायेगा। सागर इसे मार्ग देगा। केवल एक, पूर्ण ब्रह्म की उपासना करेगा। दूसरों को भी वैसा ही उपदेश देगा। जीवमात्र को परमात्मा की सृष्टि मानेगा।[४]

दिव्य आविर्भाव (२) : कामारपुकुर में श्रीरामकृष्ण

कोलकाता (तब कलकत्ता), बंगाल के उत्तर-पश्चिम में लगभग ६० मील की दूरी पर, हुगली जिले के उत्तर-पश्चिमी भाग का कामारपुकुर गाँव। पौ फूटने से लगभग बारह मिनट पूर्व, प्रात:काल लगभग पाँच बजे बालक गदाधर का जन्म हुआ। बंगाब्द १२४२, ६ फाल्गुन, शुक्लपक्ष की द्वितीया तदनुसार ईसवी सन् १८३६ के फरवरी मास की अठारहवीं तिथि। पिता क्षुदीराम स्वयं ज्योतिर्विद् थे। कालगणना करने पर उन्होंने पाया कि बालक का जन्म सिद्धियोग में हुआ है।

इसका अर्थ यह है कि नवजात का जीवन असाधारण होगा। यही बालक, जिसका जन्म-नाम नक्षत्र दृष्टि से शम्भुचन्द्र रखा गया और प्रसिद्ध नाम गदाधर, पूरे विश्व में रामकृष्ण के नाम से विख्यात हुआ। बाद में कुछ लब्धप्रतिष्ठ ज्योतिषियों ने बालक गदाधर के जन्म-समय का अध्ययन करने के बाद कहा – ''यह बालक ग्रहों के अत्यन्त शुभ योग में उत्पन्न हुआ है। ज्योतिर्विज्ञान निर्णायक रूप से कहता है, ''ऐसा जातक अत्यन्त धार्मिक तथा अत्यन्त सम्मान्य होगा तथा सदैव पुण्य कर्मों में प्रवृत्त रहेगा। वह एक मंदिर में निवास करेगा और उसके अनेक शिष्य होंगे। वह एक नूतन धर्म-सम्प्रदाय का प्रवर्तन करेगा। उसकी ख्याति पूरे विश्व में एक महान विभूति के रूप में होगी और लोग इसकी पूजा नारायण के अंशावतार के रूप में करेंगे।''[५]

ऐसी ही दिव्य विभूतियों के सम्बन्ध में देवर्षि नारद ने कहा है – वे तीर्थों को उनका तीर्थत्व प्रदान करते हैं, कर्मों को सत्कर्म और शास्त्रों को सच्छास्त्र बना देते हैं। वे संतभाव से पूरित तथा उसके द्वारा भगवदीय भाव से भावित रहते हैं। (उनके अविर्भाव से) पितर प्रसन्न होते हैं, देवता उल्लास से नृत्य करते हैं तथा पृथ्वी सनाथ हो जाती है। उनमें जाति, विद्या, रूप, कुल, धन, क्रिया आदि का भेदभाव नहीं होता।[६]

गुरुनानक और श्रीरामकृष्ण

गुरुनानक और श्रीरामकृष्ण के आविर्भाव में समय की दृष्टि से लगभग ३६७ वर्ष का अन्तराल है। स्थान की दृष्टि से भारत के उत्तर-पश्चिमी छोर, सुदूर पंजाब से दक्षिण पूर्व में बंगाल तक का अन्तर है। आज की यातायात और संचरण-सुविधाओं के चलते यह भौगोलिक अन्तर भले ही अधिक न प्रतीत हो, पर न तो नानक के समय में, न ही रामकृष्ण के, इस अन्तर को पाटना आसान था। शारीरिक रूप में उन दोनों की भेंट भी सम्भव नहीं थी। पर इन सबसे कुछ फर्क नहीं पड़ता। किसी लेखक ने सच ही कहा है, ''कला, साहित्य और अध्यात्म में जो कुछ भी महान और श्रेष्ठ है, वह एक आत्मा के दूसरे आत्मा के साथ वार्तालाप की अभिव्यक्ति है।'' नानक और रामकृष्ण सरीखी विभूतियाँ देश, काल के बन्धनों से परे भाव-जगत में विचरण करती हैं। इस दृष्टि से वे दोनों ही इस धराधाम में हम जैसे जीवों का मार्गदर्शन आज भी कर रहे हैं, हमें सत्पथ पर चलने की प्रेरणा दे रहे हैं। उन दोनों की वाणी का, उनके संदेशों का जब और जहाँ भी मिलन होता है, तो उनसे समरसता की समान ध्वनि उत्पन्न होती है। उनके विशाल हृदयों में सभी धर्मावलम्बियों, सभी जातियों, सभी वर्गों, स्त्री-पुरुषों के लिए करुणा और स्नेह की तरंगें हिलोरें लेती हैं और उन तरंगों के संगम से उत्पन्न होने वाले स्वर प्रमाणित करते हैं कि वे दोनों ही एक विराट चेतना की लहरों के रूप में अभिन्न हैं।

यह सच है कि गुरु नानक की जन्मभूमि पंजाब और श्रीरामकृष्ण की बंगाल है और उचित है कि इन दोनों प्रदेशों के नागरिक अपने-अपने इन महापुरुषों के साथ स्वयं को संबद्ध मानकर गौरव का अनुभव करते हैं। पर क्या नानक केवल पंजाब के ही हैं? क्या श्रीरामकृष्ण केवल बंगाल के ही हैं? आज पूरे भारत ही नहीं, समूचे विश्व में उनके असंख्य अनुयायी उन्हें अवतार पुरुष मानकर श्रद्धा से उनका स्मरण करते हैं। स्वामी विवेकानन्द जहाँ श्रीरामकृष्ण को अवतार के रूप में देखते हैं, वहीं वे यह भी कहते हैं, राम, कृष्ण, बुद्ध, चैतन्य, नानक, कबीर तथा ऐसी ही अन्य विभूतियाँ भी सच्चे अर्थों में अवतार हैं, क्योंकि उनके हृदय आकाश जैसे विशाल हैं।''[७]

अवतार-पुरुष

श्रीरामकृष्ण अवतार-महापुरुषों को परिभाषित करते हुए कहते हैं – ''बड़ा जहाज खुद भी आसानी से चला जाता है और साथ ही सामान से लदी नावों और डोंगियों को भी खींच ले जाता है। इसी प्रकार अवतार-महापुरुष जब आते हैं, तो अनायास ही बद्ध-जीवों को भवसागर के पार खींच ले जाते हैं।

''रेल का इंजन खुद भी गन्तव्य को जाता है और अपने साथ माल से लदे कितने ही डिब्बों को खींच ले जाता है। इसी प्रकार अवतार पाप के बोझ से लदे संसारासक्त जीवों को ईश्वर के निकट खींच ले जाते है।''[८]

इन दृष्टान्तों का अन्तर्निहित भाव यह है कि रेल के इंजन या जहाज की यात्रा केवल अपने लिये नहीं होती, वे इसलिए चलते हैं कि उनमें लदी नावें, डोंगियाँ, उनके साथ जुड़े डिब्बे, उनका माल तथा उनमें सवार यात्री भी अपने गन्तव्य तक पहुँच जाएँ। अवतार-पुरुष तो नित्य मुक्त होते हैं, उनके आविर्भाव का उद्देश्य मानव मात्र का कल्याण होता है। नारद कहते हैं, ''वे स्वयं तो (भवसागर) तरते ही हैं, लोकों को भी पार ले जाते हैं।''[९]

गुरु का उत्तराधिकार और महत्त्व

ह्यु मैकलिओड ने गुरमत की व्याख्या करते हुए कहा है – (गुरुनानक द्वारा आत्मसात् किया गया दैवी भाव,

जिसका उल्लेख पहले हो चुका है) उनके महाप्रयाण के उपरान्त, उनके उत्तराधिकारी गुरु अंगद में प्रविष्ट हुआ और इसी प्रकार उत्तरोत्तर परवर्ती गुरुओं में प्रविष्ट होता रहा ...[१०]

इसी प्रकार श्रीरामकृष्ण गुरु-परम्परा की भी मान्यता है कि वे स्वयं ही गुरुशक्ति की प्रतिष्ठा अपने उत्तराधिकारी संन्यासियों में करते हैं, उन्हीं के माध्यम से अपने संदेश का प्रचार-प्रसार करते हैं तथा भक्तों को दीक्षित करते हैं।

गुरु के महत्त्व का उल्लेख गुरु नानक ने स्वयं बार-बार किया है। वे कहते हैं कि बिना गुरु के आत्मसाक्षात्कार सम्भव नहीं है, कहने-सुनने से कुछ नहीं होता। जब गुरु से प्राप्त 'शब्द' की पहचान हो जाती है, तब अहंकार शेष नहीं रहता।[११]

वे और भी कहते हैं – "सद्‌गुरु के उपदेश के बिना भक्ति प्राप्त नहीं होती, भले ही कोई देश-देशान्तर घूमता रहे। ऐसे (गुरुविहीन, भक्तिरहित, अन्त:करण के मल से मलिन) जीवन को, ऐसे वेश को धिक्कार है।"[१२]

श्रीरामकृष्ण कहते हैं – "एकमात्र ईश्वर ही सारे जगत के गुरु हैं। ...

"जो गुरु के बारे में मनुष्य-बुद्धि रखता है, उसके साधन-भजन का क्या फल होगा?... इष्ट-दर्शन होने से पहले शिष्य को गुरु के दर्शन होते हैं। फिर वे गुरु ही शिष्य को इष्ट-देव के दर्शन करा देते हैं तथा स्वयं धीरे-धीरे उस इष्ट रूप में विलीन हो जाते हैं। तब शिष्य गुरु तथा इष्ट देव को अभिन्न, एकरूप देखता है।"[१३]

मानव मात्र के लिए करुणा

श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है – "संतों का हृदय मक्खन से भी अधिक कोमल होता है, क्योंकि मक्खन तब पिघलता है, जब उसे स्वयं को ताप पहुँचता है, परन्तु पवित्र हृदय संत तो दूसरों को आँच आने से ही द्रवित हो जाते हैं।"[१४]

गुरु नानक देव हों या श्रीरामकृष्ण, मानवीय करुणा से दोनों का हृदय ओत-प्रोत है। परदु:खकातरता इतनी है कि वे जीवमात्र की पीड़ा से द्रवित हो उठते हैं।

मुसलमान शासकों के दमन-चक्र से जब देश की प्रजा को गुरु नानक देव जी संत्रस्त होते देखते हैं, तो व्याकुल हृदय से ईश्वर के प्रति भी अपनी नाराजगी व्यक्त करने से नहीं चूकते –

"तुम तो सबके स्रष्टा हो। यह तुम्हारा कैसा न्याय है कि तुमने खुरासान देश को सनाथ रहने दिया और हिन्दुस्तान को आतंकित कर दिया? स्वयं दोषमुक्त रहने के लिए यमराज सरीखे क्रूर मुगलों का आक्रमण करवा दिया। इतने लोगों को ऐसी मार पड़ी कि सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी। क्या तुम्हें पीड़ा नहीं हुई?..."[१६]

श्रीरामकृष्ण की करुणा-प्रवणता का एक प्रसिद्ध उदाहरण उनके अप्रितम शिष्य मथुर बाबू (मथुरा मोहन विश्वास) के साथ उनकी यात्रा से सम्बन्धित है। स्वामी सारदानन्द जी लिखते हैं –

"वाराणसी और वृन्दावन की यात्रा के दौरान, यात्री-दल बैद्यनाथ शिव के प्रसिद्ध मंदिर के दर्शनार्थ कुछ दिन के लिये देवघर में रुका। निकट के गाँव की निर्धनता से पीड़ित लोगों की दयनीय दशा को देखकर श्रीरामकृष्ण का हृदय करुणा से द्रवित हो उठा। उन्होंने मथुर से कहा, "तुम माँ (दक्षिणेश्वर की माँ काली) की सम्पदा के प्रबन्धक हो। एक-एक वस्त्र, एक समय का भोजन तथा सिर पर लगाने के लिये थोड़ा तेल इनमें से प्रत्येक व्यक्ति को दे दो।" मथुर पहले तो संकोच में थे। उन्होंने कहा, "बाबा ! इस यात्रा में बहुत खर्चा हो रहा है और यहाँ बहुत-से लोग हैं। यदि मैं आपके कहे अनुसार इन लोगों में वस्तुएँ बाँटूँगा, तो बाद में (यात्रा के लिये) धन की कमी हो सकती है। आप ही बताइए मैं क्या करूँ?" ठाकुर ने इस बहाने की अनदेखी कर दी। उन गाँववासियों की दीन-दशा देखकर, करुणा से अभिभूत श्रीरामकृष्ण की आँखों में आँसू भर आए और वे व्यथित हृदय से बोले, "अरे ! मैं वाराणसी नहीं जाऊँगा। मैं यहीं, इन्हीं लोगों के साथ रहूँगा। इनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं है। मैं इनका परित्याग नहीं करूँगा।" एक हठी बालक की तरह वे मथुर का साथ छोड़कर उन निर्धन ग्रामीणों के बीच जा बैठे। अपने पितृतुल्य श्रीरामकृष्ण की इस करुणा को देखकर मथुर ने कपड़े मंगवाए तथा उनके अन्य आग्रह भी पूरे किए। ठाकुर ग्रामीणों को प्रसन्न देखकर अत्यन्त सुखी हुए और इन लोगों से विदा लेकर मथुर के साथ वाराणसी चल दिए।"[१६]

किताबी ज्ञान का खोखलापन

गुरुनानक और श्रीरामकृष्ण दोनों की यही धारणा है कि केवल पुस्तकें पढ़ने-रटने से, शास्त्रों का अध्ययन और उन पर वाद-विवाद करने से कोई लाभ नहीं होता (गीता में इसे वेदवाद कहा गया है)। जब तक परमात्मा के रस में मन रमण नहीं करता, चित्तशुद्धि नहीं होती, तब तक कोरा

शास्त्र-ज्ञान व्यर्थ है। गुरु नानक कहते हैं – "पुस्तक की बार-बार आवृत्ति करने, स्मृतियों, वेद-पुराणों को पढ़ने और सुनने, इन सबसे क्या लाभ ! जब तक मन भगवद् रस में लीन नहीं होता, इसकी चंचलता नहीं जाती।"[१७]

गुरु नानक जी निर्णायक रूप से यह घोषणा करते हैं – "अष्टांग योग का अभ्यास कर लो, पुराणों का अध्ययन कर लो, वेदाभ्यास करते रहो। किन्तु हरि-नाम के बिना मुक्ति सम्भव नहीं है।"[१८] वे और भी कहते हैं – "पंडित शास्त्रों की लाख व्याख्या करें, लाख पाठ पुराणों का करें, यदि स्वामी परमेश्वर के हिसाब में यह सब नहीं आता, तो फिर जीव को चैन, ठिकाना, शरण कहाँ मिल सकती है?"[१९]

श्रीरामकृष्ण भी ऐसा ही कुछ कहते हैं – "कोरे पांडित्य से क्या लाभ? पंडित को बहुत सारे शास्त्र, अनेकों श्लोक कण्ठस्थ हो सकते हैं, पर वह सब रटने और दुहराने से क्या लाभ? अपने जीवन में शास्त्रों में निहित सत्य की उपलब्धि होनी चाहिए। जब तक संसार में आसक्ति है, कामिनी-कांचन पर प्रीति है, तब तक चाहे जितने शास्त्र पढ़ो, ज्ञान-लाभ नहीं होगा, मुक्ति नहीं मिलेगी।"[२०] वे यह भी कहते हैं – "केवल शास्त्र पढ़कर ईश्वर के बारे में समझाना मानो नक्शे में काशी देखकर किसी के आगे काशी का वर्णन करना है।"[२१]

नदरि – कृपा

गुरुनानक भगवत्कृपा – नदरि को कर्मों की अपेक्षा कहीं अधिक आवश्यक, अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। जपुजी साहिब में उन्होंने कहा है – "कर्मों के फलस्वरूप कपड़ों की, अर्थात् सांसारिक पदार्थों की, प्राप्ति हो सकती है, परन्तु मोक्ष का द्वार तो परमात्मा की कृपादृष्टि - नदरि से ही खुलता है।"[२२] वे अन्यत्र कहते हैं – "जब उनकी कृपा होती है, तभी सत्य का साक्षात्कार होता है।"[२३] उनकी कृपा से ही सद्गुरु की प्राप्ति होती है।"[२४]

श्रीरामकृष्ण पुरुषार्थ के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी कृपा को अधिक आवश्यक मानते हैं। वे कहते हैं – "मनुष्य उन्हें अमुक कर्म से पा सकता है, अमुक से नहीं, ऐसी बात नहीं है। उनकी प्राप्ति होना उन्हीं की कृपा पर निर्भर है।"[२५] ...

"दियासलाई की एक लकड़ी के जलते ही हजारों साल का अन्धकार भी उसी क्षण दूर हो जाता है, वैसे ही एक बार ईश्वर की कृपा-दृष्टि के पड़ते ही जीव के जन्म-जन्मान्तर के पापपुंज तत्काल दूर हो जाते हैं।"[२६]

"उनकी कृपा से ही उनके दर्शन होते हैं। वे ज्ञान सूर्य हैं। उनकी एक ही किरण से संसार में यह ज्ञान का प्रकाश फैला हुआ है। इसी की सहायता से हम एक-दूसरे को पहचानते हैं और संसार में तरह-तरह की विद्याएँ सीखते हैं। यदि वे एक बार अपना प्रकाश अपने चेहरे पर डालें, तो उनके दर्शन हो सकते हैं।"[२७]

विषयासक्ति के रहते भगवत्प्राप्ति असम्भव

काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि के कारण शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध के विषयों में आसक्ति के रहते भगवत्प्राप्ति सम्भव नहीं है। गुरु नानक कहते हैं –

राज्य (प्रभुता), माल (सम्पत्ति), जाति (कुल), रूप और यौवन, ये पाँच ठग हैं। इन ठगों ने सारे संसार को ठग लिया है। इनके कारण किसी की लाज नहीं बची।"[२८]

विषय-रसों के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है – "चाँदी-सोना, कामिनी, सुगंधित द्रव्य, अश्व, शय्या, महल, भोजन, देह - ये सारे रस शरीर के हैं। इनमें आसक्ति के रहते हृदय में भगवद्रस का अनुभव कैसे सम्भव है ।"[२९]

श्रीरामकृष्ण ने भी विषयासक्ति को दुखों की जड़ बताते हुए कहा है – "संसारानल में फँसे हुए जीव, विषयासक्ति के कारण हजारों दुख-कष्ट भोगते हैं, किन्तु फिर भी वे काम-कांचन के मोह को छोड़कर भगवान में मन नहीं लगाते।"[३०] वे अन्य स्थान पर कहते हैं – "कई लोग अपने धन-सामर्थ्य, नाम-यश या सामाजिक उच्च पद का गर्व करते हैं, किन्तु ये सभी दो दिनों के लिये हैं, इनमें से कोई साथ नहीं जाएगा।"[३१]

एकात्म सम्बन्ध – देशाबाध्य, कालाबाध्य

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि शताब्दियों और मीलों का अन्तर होते हुए भी श्रीगुरुनानक देव तथा श्रीरामकृष्ण देव, दोनों विभूतियों की वाणी से समान स्वर मुखरित होता है। मानवता के ऐहिक और आमुष्मिक कल्याण के लिये समर्पित इन अवतार-पुरुषों ने हम लोगों के बीच रहते हुए, सांसारिक जीवन बिताते हुए भी पद्मपत्रमिवाम्भसा - जल में कमल के समान संसार से निर्लिप्त रहकर ईश्वरीय जीवन व्यतीत किया। न केवल शब्दों से, अपितु अपने आचरण से भी प्रमाणित किया कि पवित्र जीवन कैसे जिया जा सकता है।

ऐसा नहीं कि नानक और रामकृष्ण में व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक स्तरों पर वैचारिक अन्तर नहीं रहे। ऐसा भी नहीं है कि भाषाओं की भिन्नता तथा अभिव्यक्ति के अन्तर के

कारण उन्होंने अपनी-अपनी बातें अलग ढंग से नहीं कहीं। भौतिक दृष्ट से भी दोनों महापुरुषों का व्यक्तित्व अलग-अलग था। पर तात्त्विक दृष्टि से देखें, तो हम पाएँगे कि विराट आत्मा के ये दो दिव्यांश पारस्परिक वार्तालाप करते हुए जब विचार-विनिमय करते हैं और हमें अपना सन्देश देते हैं, तो मौलिक भाव समान ही होता है। यही भाव दोनों को एक करता है तथा इसी भाव-जगत के दर्शन साधकों, शिष्यों, अनुयायियों और अन्य असंख्य लोगों को, उनमें होते हैं।

स्वामी विवेकानन्द की प्रशस्तियाँ

१. गुरु नानक

यहीं (आर्यावर्त, पंजाब में) परवर्ती काल में सौम्य नानक ने अपने विलक्षण विश्व-प्रेम का प्रचार किया था। यहीं पर उनके विशाल हृदय के द्वार सम्पूर्ण विश्व को अपने अंक में भर लेने के लिये खुले थे, न केवल हिन्दुओं के लिए, अपितु मुसलमानों के लिये भी।''[३२]

२. श्रीरामकृष्ण

वे (श्रीरामकृष्ण) जानना चाहते थे कि अन्य धर्म कैसे हैं। इसीलिए उन्होंने अन्य धर्म-गुरुओं की तलाश की ... एक मुस्लिम संत ... जीसस क्राइस्ट... सभी धर्म सम्प्रदायों तक ... जैसा उन्हें (सभी धर्मों के विषय में) बताया गया, उन्होंने ठीक वैसा ही किया तथा प्रत्येक सिद्धान्त में वे एक ही निष्कर्ष तक पहुँचे। इस प्रकार अपने वास्तविक अनुभव से उन्होंने जाना कि प्रत्येक धर्म समान है, सभी धर्म एक ही बात सिखाने का प्रयास कर रहे हैं, अन्तर केवल साधनों का है, उससे भी बढ़कर भाषाओं का है।''[३३]

OOO

सन्दर्भ सूची –

१. जोनाथन लिविंगस्टॅन सीगल,अ स्टोरी (पृष्ठ ८७), रिचर्ड बाख, मूल अंग्रेजी से। न्यूयॉर्क, एवन बुक्स, जनवरी, १९७३

२. भाईल बाला की जन्म साखी तथा अन्य उत्तरकालीन साखियों के अनुसार। पुरातन जनम साखी, मेहरबान जनम साखी तथा अन्य कई ग्रन्थों के अनुसार गुरुजी की जन्म-तिथि १५ अप्रैल है। पर कार्तिक पूर्णिमा को ही उनका जन्म-दिन मनाने की प्रथा है।

३. मॅकलिओड, ह्यु : सिखिज्म, द कल्चरल हिस्टरी ऑफ इंडिया, संपादक : बाशम, ए.एल.। नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १२वाँ छायामुद्रण २००८, पृष्ठ २९४.

४. देखिए, पंकज, प्राणनाथ : सच की बाणी आखै गुरू नानक नई दिल्ली, रूपा एंड कं, २००१, पृष्ठ १४-१६

५. यह प्रसंग मूल बंगला में रचित श्रीश्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग (लेखक स्वामी सारदानन्द) के अंग्रेजी अनुवाद श्रीरामकृष्ण एंड हिज़ डिवाइन प्ले (स्वामी चेतनानन्द) पर आधारित है। (वेदान्त सोसाइटी ऑफ सेंट लुइस, २००३) पृष्ठ, १०९-१०

६. तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि, सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि, सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शाास्त्राणि (६९)। तन्मया: (७०) मोदन्ते पितरो, नृत्यन्ति देवता:, सनाथा चेयं भूर्भवति (७१), नास्ति तेषु जातिविद्या-रूपकुलधनक्रियादि भेद: (७२)। नारदभक्ति सूत्र, द गॉस्पल ऑफ डिवाइन लव। मद्रास, श्रीरामकृष्ण मठ, १९५५, पृष्ठ २०-२१।

७. कंप्लीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द, खंड ६, मायावती मेमोरियल संस्करण जनवरी, १९८९, पृष्ठ ३९४, कोलकाता, अद्वैत आश्रम

८. अमृतवाणी, श्रीरामकृष्ण देव के उपदेशों का बृहत-संग्रह पृ. ७२२, ७२३, नागपुर, रामकृष्ण मठ, पृष्ठ १७२ **९.** नारदभक्ति सूत्र : स तरति, तरति, स लोकांस्तारयति, (नारदभक्ति सूत्र,५०)। पृष्ठ १४

१०. मॅकलिओड, ह्यू : सिखिज्म, द कल्चरल हिस्टरी ऑफ इंडिया, पृष्ठ २९४

११. गुर बिनु आपु न चीनीऐ कहे सुणे किआ होइ। नानक शब्द पछाणीऐ हुउमै करै न कोइ।। - गुरु ग्रन्थ साहिब। सिरीमहला, पृष्ठ ५८

१२. भरमे भाहि न बिझवै जे भवे दिसंतर देसु।। अंतर मैल न उतरै ध्रिग जीवणु ध्रिग्र वेसु।। होर कितै भगति न होवई बिनु सतगुर के उपदेसु।। वही, सिरीमहला।। पृष्ठ २२

१३. अमृतवाणी, सं ६८७, पृष्ठ १६५

१४. संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना।। निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता।। रामचरितमानस, उत्तरकांड १२५-४

१५. खुरासान स्वसमाना कीआ हिंदुसतान डराइआ आपै दोस न देई करता जमु करि मुगल चड़ाइआ।। एती मार पई करलाणे ते की दरद न आइआ।। करता तूं सभना का सोई।। जे सकता सकते कउ मारे ता मनि रोसु न होई।। - गुरु ग्रंथ साहिब, आसा महला १, पृष्ठ ३६०

१६. श्री रामकृष्ण एंड हिज़ डिवाइन प्ले, पृष्ठ ५१९

१७. पड़ि पड़ि पोथी सिम्रिति पाठा।। वेद पुराण पड़ै सुणि थाटा।। बिनु रस राते मनु बहु नाटा।। – गुरु ग्रंथसाहिब, गउड़ी महला १, पृष्ठ ३५८

१८. असटसाज साजि पुराण सोधहि करहि बेद अभिआसु।। बिनु नाम हरि के मुकुति नाही कहै नानक दासु।। – वही, धनासरी महला १, पृष्ठ ६६३

१९. लख सासत समझावणी लख पंडित पड़हि पुराण।। जा पति लेखे ना परै ता जीअ किथै फिरि पाहि।। - वही, आसा १, घरु ३१, पृष्ठ ३५८

२०. अमृतवाणी सं. १३९, पृष्ठ ३४

२१. अमृतवाणी सं. १४५, पृष्ठ ३५

२२. करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरू।। जपुजी ४, पृष्ठ २१

२३. नदरि करै सचु पाइऐ। गुरु ग्रंथ साहिब सिरी महला १, पृष्ठ ५१

२४. नदरि करहि जे आपणी ता नदरी सतिगुर पाइआ।। वही, पउड़ी ४, पृष्ठ ४६५,

२५. २६,२७, अमृतवाणी सं. ६७३, ६७४, ६८६, पृष्ठ १६०, १६२-१६३

२८. राजु मालु रूप जाति जोबनु पंजे ठग। एनी ठगी जग ठगिआ किनै न राखी लज।। – गुरु ग्रंथसाहिब, सलोक म. १,२३,

शेष भाग पृष्ठ १२७ पर

सारगाछी की स्मृतियाँ (७७)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

हमारे देश में अयोग्य लोगों को प्रभारी बना देते हैं। क्या करोगे, लोग मिलते नहीं हैं ! जो मिलता है, उसी को भेज देते हैं। विद्यालय खोल लिया, किन्तु अध्यापक ही नहीं हैं। यही है भारतवर्ष। पहले यहाँ अंग्रेजों ने आकर माल बेचने के लिए अन्य रोजगार समाप्त कर दिया। देश में माल भेजने के लिये रेलगाड़ी बनाई। इसके कारण सिंचाई बाधित हुई। इस देश का प्राण गो देवता है, इसलिये लोग गाय का गोबर तक खा लेते हैं। प्राकृतिक जलनिकासी बन्द होते ही बाढ़, अकाल, महामारी, मलेरिया दिखाई पड़ने लगा।

जो लोग चालाक थे, वे प्राण बचाने के लिए, पेट में अन्न पाने के लिये, जो सामने आया, वही सीख लिये। इसके फलस्वरूप सामूहिक जीवन नष्ट हो गया। पिता क्लर्क, एक पुत्र इंजीनियर, एक पुत्र अध्यापक और एक पुत्र वकील, किसी के साथ किसी का कोई सबन्ध नहीं रहा, इससे समाज में विशृंखलता दिखने लगी। साधारण लोगों को देखकर तो समझ सकते हो कि कितने कठोर अनुशासन में रखना चाहिए, नहीं तो, सामाजिक-संरचना ठीक नहीं होती है। छोटी आयु से ही सैन्य-अनुशासन में रखकर माता-पिता के द्वारा ये सब शुभ संस्कार नहीं देने से चरित्र-निर्माण नहीं होता। किन्तु वर्तमान समाज-व्यवस्था में क्या यह सम्भव है?

पढ़ना-लिखना एक शौक मात्र हो गया है। ये सब क्या अध्यापक हैं? स्कूल तो एक व्यवसाय हो गया है। ढाका में एक स्कूल देखा। राम ! राम ! मैंने अध्यापन प्रारम्भ किया, किन्तु कई कठिनाइयों के कारण छोड़ दिया। विद्यालय के सामने एक पुस्तकालय में दरवाजा खोलकर बैठा रहता। कोई अध्यापक मार नहीं सकता था, फिर भी कोई चिकोटी-काट देता। ये लोग क्या सिखाएँगे। किन्तु हम लोगों ने नारायण-भाव से सेवा करने के उद्देश्य से विद्यालय खोला है। जो छात्र जितना कम अवसर पाते हैं, उन्हें उतना आगे रखना होगा। जो दुकानदार का लड़का है, उसे फूल, चंदन, चंडी-पाठ, इन सबमें अधिकाधिक रखने से ही तो पूर्व संस्कार जाएगा। देश में इस समय तमोगुण है। रजोगुणी लोग ही इस समय उपयुक्त व्यक्ति हैं। यदि सतोगुण आएगा, तभी देश जाग्रत होगा।

सेवक – रामकृष्ण-वचनामृत में है, मास्टर महाशय कहते हैं – आपने मन रख दिया है। ठाकुर ने कहा – नहीं, उन्होंने भक्तों के लिए रख दिया है। इसका क्या अर्थ है?

महाराज – भक्तों के लिए रखा है, कहने से उनकी रुचि और अरुचि दिखाई पड़ती है। उनकी रुचि और अरुचि है? बात यह है कि सुई में लगी कीचड़ के धुल जाने पर ही उसे चुम्बक आकर्षित करेगा, उसमें कोई कृपा, रुचि-अरुचि की बात नहीं है। यह प्रकृति का नियम है, यही वास्तविकता है। अवतार होते हैं एक प्रतिक्रिया। समष्टि में कहीं भी गड्ढा होने पर (पाप होने पर) तब स्वाभाविक नियम से एक ओर ऊँचा हो जाता है (वे अवतार हैं)। हम लोग भूल जाते हैं कि जिन्हें कृष्ण कहते हैं, वे ही काली हैं। हम कहते हैं, कृष्ण काली हुए थे !

१०-७-१९६१

दोपहर में कोई एक खरगोश के बच्चे को पकड़कर लाया है। महाराज तो देखकर ही घबड़ा गए। कहते हैं – उसे रख आओ, रख आओ। देखो, उसके अवचेतन मन में बच्चे का पालन-पोषण करने का शौक था। मन की कैसी धीमी प्रगति होती है, वह समझी नहीं जा सकती। सदा-सर्वदा सजग रहना पड़ता है। परोपकार भी खतरनाक है। श्रीमाँ सारदा ने कहा है – यदि सोने जैसी सुन्दर युवती डूबती जा रही हो और तुम्हारे पैर बढ़ाने से वह बच सकती है, तब भी पैर मत बढ़ाना। हो सकता है कि तुमने उसे जल से बाहर निकाल दिया, किन्तु अब वह कहाँ जाएगी? तुम्हारे ही पल्ले पड़ेगी। यह जो वन के पक्षी को लाकर पालन-पोषण करना, रास्ते के बच्चों को इकट्ठा करके पालन-पोषण करना, यह सब संसार-भोग का बहाना है।

मठ में ज्ञान महाराज का एक पक्षी था। उसे केला और कितना कुछ खिलाया जाता था ! उसे ही लेकर लगे रहे। एक जगह एक पक्षी पिंजरा में रहता था। वह उसमें बहुत दिनों तक था। एक दिन अचानक किसी तरह बाहर आ गया। पिंजरे में बंद रहने से वह उड़ना भूल गया – यहाँ से वहाँ उछलता, वहाँ से वहाँ उछलता। चारों ओर बिल्लियाँ थीं। मैं तो बड़े संकट में पड़ गया। इतने दिनों तक सुरक्षित रखकर आज इस दुर्दिन में बिल्ली के आहार के लिये छोड़ देना ठीक नहीं होगा। बहुत कठिनाई से उसे फिर से पिंजरे में रखा गया।

परोपकार के सम्बन्ध में बहुत ही सावधानी बरतनी पड़ती है। हम लोग परोपकार करते समय फल और आसक्ति का त्याग नहीं कर पाते। इसके फलस्वरूप नाम-यश और स्वर्ग का सुख मिलता है। इसीलिए माँ ने कहा था – बाबा ! फल लो और उसके साथ फल-दान का विशेष फल भी लो। निष्कामता के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में परोपकार भी एक प्रकार का भोग है। द्वैतबुद्धि से ही परोपकार होता है। दूसरों को आनन्द देना, यद्यपि यह परोपकार का अतीव उच्च विचार है। वीर्यधारण करने से ही काम-भाव नहीं चला जाता। इस भोग का संस्कार इस प्रकार से नहीं रहने पर भी अन्य प्रकार से रहता है, जैसे सुन्दर मुख, सुन्दर बच्चे के साथ मिलना-जुलना इत्यादि।

साहचर्य बड़ी सुन्दर चीज है। यह मनुष्य को देवता और दानव भी बना सकती है। हमारे लिए यह सीख है। दिन-रात विषयी लोगों की विचारधारा का प्रतिरोध नहीं किया जा सकता है।

प्रश्न – आप राजा महाराज के साथ दक्षिणेश्वर गए थे क्या?

महाराज – एक बार रामलाल दादा के पुत्र के यज्ञोपवीत संस्कार में महाराज लोगों के साथ दक्षिणेश्वर गया था। तब साथ में थे राजा महाराज, मास्टर महाशय, अक्षय मास्टर, शरत् महाराज, शरत् चक्रवर्ती। मास्टर महाशय तो मेरी बहुत प्रशंसा करते हुये कहते थे कि पूर्व बंगाल को प्रकाशित किया है इत्यादि। याद आती है कि मुझे ब्राह्मणों की पंगत में भोजन कराना चाहते थे, किन्तु मैं इन लोगों के साथ ही बैठा था। तब मेरी आयु २५-२६ वर्ष की रही होगी। मास्टर महाशय ने मेरा परिचय देते हुए कहा, "इनका कंठ बहुत मधुर है।" अक्षय मास्टर ने कहा –"होगा क्यों नहीं, सन्तरे के पेड़ पर चढ़कर पेटभर सन्तरा खाकर गाना गाते हैं ! फिर कंठ मधुर नहीं होगा?" उन्हें देखने से तो वैसा नहीं लगता था, कंठ का स्वर थोड़ा-सा भी सुन्दर नहीं था, किन्तु वे इतना मधुर बनाकर बोले थे कि लगा कि ऐसा मधुर कंठ-स्वर कभी सुना नहीं। हम लोग सिलेट की बांगला के अभ्यस्त थे। कलकत्ते में मास्टर महाशय को देखकर ही चकित रह गया – कैसा चेहरा, कैसा कंठ-स्वर ! वार्तालाप नहीं, मानो वह अभिनय की भाषा है ! हम लोग रंगमंच पर अभिनय करते समय जिस भाषा का व्यवहार करते हैं।

(क्रमशः)

विविध भजन

आज अयोध्या धाम

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

अवध में आज बड़ो आनन्द।
भाइन्ह सहित भवन भूपति के प्रगटे रघुकुल-चन्द।।
नवमी तिथि मधुमास पवन बह शीतल सुरभित मन्द।
मध्य दिवस विश्राम काल में आये आनन्द-कन्द।।
प्रमुदित जनम बधइया गावैं नगर नारि नर वृन्द।
हरषहिं हिये सुमन सुर बरसहिं विप्र पढ़ै श्रुति छन्द।।
होत भुआल मगन मन मानहुँ पायो ब्रह्मानन्द।
जन राजेश भूप जीवन के मिटे सकल दुःख द्वन्द।।

रामकृष्ण का नाम गान कर

अक्षयकुमार सेन कृत् रामकृष्ण पूँथी

काव्यानुवाद – रामकुमार गौड़, वाराणसी

ज्ञान-पिता तुम ही इस जग के तुम ही सदा भक्ति-माता।
भक्त-दुख से कातर होकर तुम ही शुद्ध-बुद्धि दाता।।
अधमोद्धारी करुणासागर चरणों में दो मुझको स्थान।
बिना प्रयोजन दुखी दास यह सम्मुख तुम सम कृपानिधान।।
स्वार्थ शून्य कर दो प्रभु मुझको करके कृपावारि का दान।
तुम्हीं बताओ जग में तुम-सा रहता अन्य कौन दयावान।।
हाथ जोड़कर कहता हूँ मैं सुन ले रे मन सदा अबोध।
रामकृष्ण का नाम गान कर दिवा-रात्रि नित रहो प्रबोध।।
प्रभु के चरण कमल में रहकर निर्भय बन जाओ हे मन।
कर अपना उद्धार जगत में दे दो हरि को तन–मन-धन।।

चाबी कहाँ रखी थी, मिल नहीं रही है

स्वामी मेधजानन्द

एक बार एक युवक ध्यान सीखने के लिए किसी आश्रम में गया। वह किसी गुरु अथवा आजकल की भाषा में कहें तो योगा-गुरु से मिलना चाहता था। किसी ने उसे योग-गुरु का कमरा दिखाया। बरसात के दिन थे। उसने जूते बाहर उतारे और छतरी को वहीं रखकर कमरे में प्रवेश किया। वहाँ उसने देखा कि एक ऋषितुल्य व्यक्ति प्रसन्न मुद्रा में कॉलेज के छात्रों को ध्यान सिखा रहे हैं। सबके चेहरों पर एक आनन्द झलक रहा था। थोड़ी देर वह वहाँ बैठा रहा। वह जल्दबाजी में था और थोड़ा अधीर भी था। कुछ देर बाद एक-एक कर सब चले गए। युवक ने योग-गुरु से कहा कि वह ध्यान सीखना चाहता है। योग-गुरु ने उससे पूछा कि वह ध्यान क्यों सीखना चाहता है? उसने कहा कि ध्यान सीखने से मन की एकाग्रता बढ़ती है और वह पढ़ाई अच्छी तरह कर सकेगा।

गुरु ने उससे पूछा, ''बहुत अच्छी बात है। अच्छा बताओ, मन क्या एक होता है कि दो होते हैं?'' युवक ने कहा कि मन तो एक ही होता है। ''अच्छा तो बताओ, जब तुमने इस कमरे में प्रवेश किया, तब अपने जूते और छतरी दरवाजे के दायें तरफ छोड़े थे या बाएँ तरफ?'' वह युवक अपना सिर खुजलाता रहा और ठीक उत्तर नहीं दे सका।

प्राय: देखने में आता है कि हमने कोई वस्तु किसी स्थान पर रखी और भूल गए कि कहाँ रखी। वैसे भूलने की घटनाएँ चाबियों को लेकर कुछ अधिक ही होती हैं। हमने कहीं चाबी रखी, पर बाद में भूल गए कि कहाँ रखी थी। इसे कहते हैं – अन्यमनस्कता। अर्थात् हम अमुक कार्य कर रहे हैं, किन्तु हमारा मन वहाँ न होकर दूसरी जगह पर है। यह मन की चंचलता ही है और इसे यदि प्रारम्भ में ठीक नहीं किया, तो यह हमारी आदत ही बन जाती है।

अन्यमनस्कता को दूर करने का उपाय है – मन की सजगता। हम छोटा-मोटा कोई भी कार्य करें, पूरी सजगता और स्फूर्ति से करें। सजगता का अर्थ है कि कार्य करते समय हमारा मन अपने कार्य में ही लगा रहे। कार्य को अधीरता से न कर शान्तिपूर्वक करें। जल्दबाजी में, अधीरतापूर्वक बहुत-से कार्य एक साथ करने से हमारा मन भटक जाता है। जो छोटे-से-छोटा कार्य भी सजगता और मनोयोग से कर सकता है, वह बड़ा कार्य, यहाँ तक कि ध्यान भी अच्छी तरह से कर सकता है। उदाहरण के तौर पर हमने घर में झाड़ू लगाया, तो झाड़ू अच्छी तरह से लगाकर उसे उसी स्थान पर रखना है, जहाँ से लिया था। कुछ लोग झाड़ू जल्दबाजी में लगाकर किसी देश का नक्शा ही बना डालते हैं। कार्य को अच्छी तरह सम्पन्न करने से मन शान्त और प्रफुल्लित होता है और कार्यक्षमता भी बढ़ती है।

एक बार श्रीरामकृष्ण देव के कुछ भक्तों ने उद्यान में प्रीतिभोज किया। भोजन के बाद श्रीरामकृष्ण देव ने अपने एक शिष्य से कहा, ''वे लोग कुछ छोड़ तो नहीं गए, कुछ मिलने पर उसे यहाँ ले आना।'' शिष्य ने जाकर देखा कि वहाँ चाकू, छतरी एवं अन्य वस्तुएँ पड़ी थीं। लोग उन्हें लेना भूल गए थे। शिष्य ने वे सारी वस्तुएँ लाकर श्रीरामकृष्ण को दीं। उनमें से चाकू श्रीरामकृष्ण देव का ही था, जो भक्तगण उनसे माँगकर ले गए थे। शिष्य उसे अलमारी में जैसे ही रख रहा था, तब श्रीरामकृष्ण देव ने उससे कहा, ''तुम इसे कहाँ रख रहे हो? नहीं, वहाँ नहीं, इसे छोटे तख्त के नीचे रख दो। इसकी जगह वहाँ है। हर वस्तु निश्चित स्थान पर ही रखनी चाहिए। मान लो, मुझे रात में चाकू की आवश्यकता पड़ी। यदि तुम अपनी इच्छानुसार इसे कहीं भी रख दोगे, तो इसकी खोज में मैं अन्धेरे में पूरा कमरा टटोलता रहूँगा और परेशान होकर सोचता रहूँगा कि तुमने इसे कहाँ रख दिया है। क्या ऐसी सेवा भी कोई सेवा है?''

छोटे-से-छोटा कार्य भी सजगता, उत्साह और स्फूर्ति से करने से हमारे चरित्र का विकास होता है। सजग मन से भूलें कम होती हैं। वह एक पहरेदार का कार्य करता है। मन सजग रहे, तो हमारी ऊर्जा का भी संचय होता है। उदाहरण के तौर पर हम किसी स्थान पर जाने के लिए ट्रेन में बैठे हैं। कुछ देर बाद टिकट-परीक्षक आता है। जब टिकट निकालने के लिए हम अपनी जेब टटोलते हैं, तब पता लगता है कि घर से टिकट लाना ही भूल गए। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''यदि तुम सचमुच किसी मनुष्य के

शेष भाग पृष्ठ १२७ पर

मुण्डक-उपनिषद् व्याख्या (९)

स्वामी विवेकानन्द

(१८९६ ई. के जनवरी में अमेरिका के न्यूयार्क नगर में स्वामीजी के 'ज्ञानयोग' विषयक व्याख्यानों की एक शृंखला का आयोजन किया गया था। २९ जनवरी को उन्होंने 'मुण्डक-उपनिषद्' पर चर्चा की थी। यह व्याख्यान उनके एक अंग्रेज शिष्य श्री जे. जे. गुडविन ने लिपिबद्ध कर रखा था। परवर्ती काल में इसे स्वामीजी की अंग्रेजी ग्रन्थावली के नवें खण्ड में संकलित तथा प्रकाशित किया गया। सैन फ्रांसिस्को की प्रव्राजिका गायत्रीप्राणा ने स्वामीजी के सम्पूर्ण वाङ्मय से इससे जुड़े हुए अन्य सन्दर्भों को इसके साथ संयोजित करके 'वेदान्त-केसरी' मासिक और बाद में कलकत्ते के 'अद्वैत-आश्रम' से ग्रन्थाकार में प्रकाशित कराया। 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने इसका अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करके इसे धारावाहिक रूप से प्रकाशन हेतु प्रस्तुत किया है – सं.)

यं यं लोकं मनसा संविभाति
विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान्।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामांस्-
तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेत् भूतिकामः ।।३.१.१०।।

उपनिषद् हमें बताती हैं कि यदि हम स्वर्ग तथा उन सभी स्थानों में जाना चाहें, तो हम वहाँ पहुँच सकते हैं। वेदों की भाषा में कहें, तो मनुष्य जो भी इच्छा करे, उसे प्राप्त करता है।[१]

मन के बाहर वस्तुतः कुछ भी नहीं है। इस दृश्यमान जगत् का वस्तुतः बाहर कोई अस्तित्व नहीं है। ये सभी कुछ मन की कल्पनाएँ हैं। निष्क्रिय हो जाने पर इसी मन में ब्रह्म-चैतन्य प्रतिबिम्बित होता है। उस अवस्था में अस्तित्व के सभी स्तरों तक पहुँच हो जाती है, तब वह जिन-जिन लोकों का चिन्तन करता है, उन-उन के दर्शन होते हैं। जो भी संकल्प लिये जाते हैं, वे तत्काल पूरे हो जाते हैं। जो व्यक्ति सत्य-संकल्प की अवस्था को पाकर भी सजगता बनाये रख सकता है और हर तरह की कामनाओं से मुक्त है, उसी को ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। दूसरी ओर, जो व्यक्ति इस अवस्था की प्राप्ति के बाद अपना सन्तुलन खो बैठता है, उसे अनेकों प्रकार की सिद्धियाँ मिलती हैं, परन्तु वह अपने परम लक्ष्य से चूक जाता है।[२]

आत्मा न कहीं जाती है और न कहीं आती है। उसका न जन्म है और न मृत्यु। तुम सभी सर्वव्यापी हो, तुम आत्मा हो। इसी क्षण तुम स्वर्ग में हो और साथ ही निकृष्टतम लोकों में भी विद्यमान हो। तुम सर्वत्र हो। तुम कहाँ नहीं हो? अतः तुम भला कैसे अन्यत्र हो सकते हो? यह सारा आवागमन केवल काल्पनिक है – आत्मा न कभी आ सकती है और न जा सकती है।

ये दृश्य बदल जायेंगे। जब मन एक विशिष्ट अवस्था में होगा, तो वह एक विशेष दृश्य देखेगा, एक विशेष स्वप्न देखेगा। अपनी वर्तमान अवस्था में हम सभी लोग इस संसार को – मनुष्यों, पशुओं तथा अन्य सभी वस्तुओं को देख रहे हैं। परन्तु इसी स्थान पर, यह परिस्थिति (दृश्य) बदल जायगी। और जिस वस्तु को हम पृथ्वी के रूप में देख रहे हैं, उसी को स्वर्ग के रूप में, या उसके विपरीत स्थान (नरक) या अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी स्थान के रूप में देखेंगे।

यह सब कुछ हमारी कामनाओं पर निर्भर करता है। परन्तु यह स्वप्न चिरस्थायी नहीं हो सकता; जैसा कि हमें पता है कि रात में दिखने वाला हर स्वप्न अन्ततः टूट जाता है। इनमें से कोई भी स्वप्न चिरस्थायी नहीं होगा। हम जो करने की सोचते हैं; उसी को स्वप्न के रूप में देखते हैं। अतएव, वे लोग जो इस जीवन में हमेशा स्वर्ग जाने और अपने मित्रों से मिलने की सोचते रहते हैं; वे लोग अपने वर्तमान जीवन में पाली हुई कामनाओं द्वारा विवश होकर अन्य स्वप्नों को देखेंगे। जो लोग अन्धविश्वासी हैं और नरक आदि की धारणाओं से भयभीत रहते हैं, वे स्वप्न में स्वयं को गर्म स्थानों में निवास करते हुए पायेंगे। जो लोग इस जीवन में पाशविक धारणाओं से युक्त हैं, वे मरने के बाद सूअर आदि पशुओं के रूप में जन्म लेंगे। प्रत्येक व्यक्ति जो भी इच्छा करेगा, वही प्राप्त करेगा।

इस उपनिषद् के प्रारम्भ में बताया गया है कि जो लोग थोड़ा-बहुत सड़क या अस्पताल-निर्माण जैसे भले कर्मों को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, वे लोग मरने के बाद एक अच्छा स्वप्न देखेंगे। स्वप्न में वे लोग स्वयं को एक ऐसे स्थान में पायेंगे, जहाँ वे देव-शरीरों में होंगे और यथेच्छा भोजन कर सकेंगे तथा घूम-फिर सकेंगे, यहाँ तक कि दीवारों आदि से होते हुए भी अबाध रूप से विचरण कर सकेंगे; और कभी-

१. Complete Works, खण्ड ९, पृ. २४१

२. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ६, पृ. ४४

कभी इस पृथ्वी पर उतरकर किसी-किसी को चौंका देंगे।

हमारे पुराणों में स्वर्ग के निवासी देवताओं का उल्लेख मिलता है। ... ये देवता तुम्हारे देवदूतों के समान हैं; केवल उनमें से कुछ बीच-बीच में मनुष्यों की पुत्रियों के प्रति आकृष्ट होकर दुष्टता पर उतर आते हैं। हमारे देवतागण इसी तरह के कार्यों के लिए प्रशंसित होते हैं। ऐसे देवी-देवताओं से तुम क्या पाने की आशा कर सकते हो? वे यहाँ के अस्पताल आदि निर्माताओं के समान ही हैं और उनका ज्ञान भी मनुष्यों से अधिक नहीं होता। वे अपने कुछ पुण्य-कर्मों के फलस्वरूप देवता बन जाते हैं। वे लोग प्रशंसा, प्रसिद्धि आदि पाने हेतु सत्कर्म (पुण्य) करते हैं और उनके पुरस्कार के रूप में वे स्वप्न देखते हैं कि वे स्वर्ग में हैं और यह सब भोग कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त दैत्यगण हैं, जिन्होंने इस जीवन में दुष्कर्म किये हैं। परन्तु हमारे ग्रन्थों का कहना है कि ये स्वप्न लम्बे समय तक नहीं चलते, उन स्वप्नों के बाद वे लोग या तो वापस लौटकर मनुष्यों के रूप में फिर वही पुराना अथवा उससे भी बुरा स्वप्न देखते हैं। अतएव इन ग्रन्थों के मतानुसार प्रत्येक समझदार तथा विवेकवान मनुष्य को चाहिये कि वह स्वर्गों तथा नरकों जैसे मूर्खतापूर्ण विचारों का सदा-सर्वदा के लिए परित्याग कर दे।

इस संसार में दो ही चीजों का अस्तित्व है – स्वप्न तथा वास्तविकता। जिसे हम जीवन कहते हैं, वह सपनों का एक तारतम्य – सपने के भीतर सपना मात्र है। एक स्वप्न को स्वर्ग कहते हैं, दूसरे को पृथ्वी, तीसरे को नरक आदि आदि – ये सभी स्वप्न हैं। वास्तविकता को ब्रह्म कहते हैं – वह तत्त्व जो सत्-स्वरूप, चित्-स्वरूप तथा आनन्द-स्वरूप है।

उन ऋषि को गुरु कहते हैं, जो इन सारे स्वप्नों से छुटकारा पा लेना चाहते हैं; और इनसे पृथक् होकर अपने स्वरूप को जान लेना चाहते हैं – वे, जो इस आत्म-सम्मोहन के परे चले जाना चाहते हैं।

हमें सारे सपनों से छुटकारा पा लेना होगा। हमें इन सबसे पृथक् खड़े होकर अपने स्वरूप को जान लेना होगा। हमें इस आत्म-सम्मोहन के परे चले जाना होगा। ... हम ज्योंही कोई कामना करते हैं, त्योंही स्वयं को सम्मोहित कर डालते हैं। मैं ज्योंही इच्छा करता हूँ कि स्वर्ग जाऊँगा, त्योंही वह इच्छा मुझे सम्मोहित कर लेती है; और मैं मरने के बाद सीधा स्वर्ग पहुँच जाता हूँ। और वहाँ के देवताओं आदि को देखने लगता हूँ। मैं मृत्यु के द्वार से लौटे करीब पचास लोगों से मिला हूँ, जिनसे मैंने उनके स्वर्ग में पहुँचने की कथाएँ सुनी हैं। ये हमारे देश की पुराण-कथाएँ हैं; और ये दिखाती हैं कि यह सब सम्मोहन या मायाजाल है।

यहीं पर पाश्चात्य लोग बड़ी भूल करते हैं। जहाँ तक तुम लोग स्वर्ग-नरक की धारणाओं पर विश्वास रखते हो, वहाँ तक हम तुमसे सहमत हैं; परन्तु तुम कहते हो कि यह संसार वास्तविक है। ऐसा नहीं हो सकता। यदि यह जगत् सत्य हो, तो स्वर्ग तथा नरक भी सत्य होंगे, क्योंकि इनमें से प्रत्येक का प्रमाण एक ही है। यदि एक सम्मोहन की अवस्था है, तो वह पूरा-का-पूरा वही होगा।

वेदान्तियों का कहना है कि स्वर्ग आदि तो सम्मोहन हैं ही; साथ ही यह जीवन और यहाँ का सब कुछ मायाजाल ही है। बहुत-से लोग सम्मोहन की एक अवस्था से दूसरी में जाना चाहते हैं; इन्हें हम मूढ़ या संसारी कहते हैं। ये मानो ऐसे यात्री हैं, जो एक स्वप्न से दूसरे स्वप्न में या एक मायाजाल से दूसरे में जाने के इच्छुक हैं। पचास वर्षों तक इनके मन में यही धारणा बनी रहती है कि ये पुरुष तथा स्त्रियाँ हैं।

आत्मा में पुरुष तथा स्त्री की धारणा – यह कैसी अनर्गल बात है? यह एक भयंकर मायाजाल है। आत्मा में भला कोई लिंग भेद कैसे हो सकता है। यह आत्म-सम्मोहन है। तुम लोगों ने स्वयं को सम्मोहित कर लिया है और सोचते हो कि तुम लोग नर तथा नारियाँ हो। यदि हम लोग मूर्ख हुए, तो हम लोग अपने को फिर सम्मोहित करते हुए स्वर्ग जाने की इच्छा करेंगे; और देवी-देवताओं के नाम पर हर तरह की बकवास सुनेंगे तथा घुटने टेककर प्रार्थना करेंगे; और लाखों सिंहासनों पर आसीन लाखों देवी-देवताओं की पूजा करेंगे। अन्त में हमें पुन: स्वयं को सम्मोहित करना होगा।

इस जगत् में हम सभी लोग एक ही नौका में सवार हैं; और इस नौका में बैठे हुए सभी लोग एक-दूसरे को देखते हैं। इस सपने तथा सम्मोहन से मुक्त होकर अलग खड़े हो जाओ। कुछ मूर्ख स्वयं को सम्मोहित करके सोचते हैं कि वे शरीरधारी हैं और उनके पास पत्नियाँ तथा ये सारी चीजें हैं। मैंने भी मूर्खतापूर्वक अपने को सम्मोहित कर लिया है कि मेरे पास इन्द्रियाँ तथा ये सारी वस्तुएँ हैं। अत: हम सभी एक ही नौका में सवार हैं और एक-दूसरे को देखते हैं। यहीं पर करोड़ो लोग ऐसे हो सकते हैं, जिन्हें हम देख या छू नहीं पाते। ठीक वैसे ही, जैसे सम्मोहन में तुम्हारे

सामने तीन पुस्तकें पड़ी हो सकती हैं, परन्तु तुम्हें सम्मोहित करके कहा जाता है कि इनमें से एक नहीं है; और तुम उसी अवस्था में पूरे साल रहते हो और कभी उसे नहीं देख पाते। मान लो तीस लोग उसी सम्मोहन के प्रभाव में हैं और उनसे कहा गया है कि इस पुस्तक का अस्तित्व नहीं है। जो लोग उस अवस्था में हैं, वे सभी उस पुस्तक को नहीं देख सकेंगे। पुरुष, नारियाँ, पशु – सभी सम्मोहित हैं और सभी इस स्वप्न को देखते हैं, क्योंकि वे सभी एक ही नौका में सवार हैं।

वेदान्त दर्शन कहता है कि यह भौतिक, मानसिक तथा नैतिक – सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक मायाजाल है। इस मायाजाल का कारण (कर्ता) कौन है? तुम स्वयं इसके लिए उत्तरदायी हो। यह रोना, चीखना और दीवारों के किनारों पर सिर पटकना – इनसे तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा।

वैसे, सम्मोहन की हर वस्तु पर सिर पटकने से अनासक्ति का उदय होता है; और सम्मोहन से अधिकाधिक चिपके रहना आसक्ति कहलाता है। इसीलिए तुम सभी धर्मों में देखते हो कि वे संसार को त्यागना चाहते थे, यद्यपि उनमें से अनेक इसे समझ नहीं पाते थे। ये लोग एक जंगल में जाकर उपवास करते थे और देखते कि शैतान दौड़कर उनके पास चला आ रहा है।

तुमने भारतवर्ष की वे अनोखी कहानियाँ जरूर सुनी होंगी कि किस प्रकार वहाँ के जादूगर लोगों को एक रस्सी को आकाश में उठती हुई दिखा सकते थे। मैंने ऐसे किसी जादूगर को नहीं देखा है, परन्तु एक मुगल सम्राट जहाँगीर ने इसका उल्लेख किया है। वे लिखते हैं – "हे अल्ला, ये काफिर लोग क्या विचित्र खेल दिखाते हैं। ये लोग एक रस्सी या जंजीर को उठाकर ऊपर की ओर फेंक देते हैं और (तब तक प्रतीक्षा करते हैं, जब तक कि) वह आकाश में मानो किसी चीज से टकराकर स्थिर नहीं हो जाती। इसके बाद वे एक बिल्ली को उस जंजीर पर चढ़ाते हैं; इसके बाद वे एक कुत्ते को; फिर एक भेड़िये को, फिर एक बाघ को और फिर एक शेर को उस पर चढ़ाते हैं। ये सभी उस जंजीर पर चढ़ते हुए (आकाश में) अदृश्य हो जाते हैं। कभी-कभी वे मनुष्यों को उस जंजीर पर चढ़ाते हैं। दो व्यक्ति ऊपर जाकर युद्ध शुरू करते हैं और फिर दोनों ही लुप्त हो जाते हैं। थोड़ी देर बाद तुम्हें युद्ध का शोर सुनाई देता है। और फिर एक सिर, एक हाथ, एक पाँव नीचे गिर पड़ते हैं। ध्यान रहे, उस समय दो या तीन हजार लोग उपस्थित होते हैं।" वह व्यक्ति केवल एक लंगोटी पहने रहता है।

लोग इसे सम्मोहन या दर्शकों पर मायाजाल फेंकना (या नजरबन्द) कहते हैं। इसका प्रभाव एक निर्दिष्ट सीमा के भीतर ही रहता है। यदि तुम उस सीमा के बाहर जाओ या भीतर आओ, तो तुम उसे नहीं देख सकोगे। जो व्यक्ति यह जादू दिखा रहा है, वह कुछ भी नहीं देखता। अत: यदि तुम उसके पास खड़े हो जाओ, तो तुम भी कुछ नहीं देखोगे। यह (संसार) भी इसी तरह का एक फैला हुआ मायाजाल है।

हमें या तो (ज्ञान के द्वारा) इस सीमा के बाहर चले जाना होगा अथवा (भक्ति के द्वारा) इस मायाजाल के केन्द्र में ईश्वर के पास खड़े रहना होगा। वही एक महान् जादूगर है, जो इन सभी वस्तुओं को लेकर खेल रहा है – वही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकट करता है। **(क्रमश:)**

पृष्ठ १२१ का शेष भाग

पृष्ठ १२८८

२९. रसु सुइना, रसु रूपा कामणि रसु परमल की वासु। रसु घोड़े रसु सेजा मंदर रसु मीठा रसु मासु।। एते रस सरीर के कै घट नाम निवासु।। – गुरु ग्रंथ साहिब, सिरी महला १, पृष्ठ १५

३०. अमृतवाणी सं. ६८, पृष्ठ १८

३१. अमृतवाणी सं. ९४, पृष्ठ २४

३२. कंप्लीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द, खंड ३, पृष्ठ ३६६

३३. वही, खंड ४, पृष्ठ १७३-१७४

नोट: गुरुवाणी के सभी उद्धरण Winand. M. Callewaert द्वारा संकलित और मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली द्वारा देवनागरी लिपि में १९९६ में प्रकाशित Sri Guru Granth Sahib, (Vol.1) से लिए गए हैं। संकलनकर्ता के अनुसार यह लिप्यंतर शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के पाठ की प्रतिकृति है।

पृष्ठ १२४ का शेष भाग

चरित्र को जाँचना चाहते हो, तो उसके बड़े कार्यों से उसकी जाँच मत करो। प्रत्येक मूर्ख किसी विशेष अवसर पर बहादुर बन सकता है। मनुष्य के अत्यन्त साधारण कार्यों की जाँच करो और वास्तव में वे ही ऐसी बातें हैं, जिनसे तुम्हें एक महान पुरुष के वास्तविक चरित्र का पता लग सकता है। आकस्मिक अवसर तो छोटे-से-छोटे मनुष्य को भी किसी-न-किसी प्रकार का बड़प्पन दे देते हैं। परन्तु वास्तव में महान तो वही है, जिसका चरित्र सदैव और सब अवस्थाओं में महान तथा सम रहता है।" OOO

निमाई और ब्राह्मण देवता

चैतन्य महाप्रभु भगवान के अवतार माने जाते हैं। अवतार हमें बताते हैं कि जीवन में किस प्रकार उनसे जुड़कर हम सच्ची शान्ति और सच्चा आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। अवतार के जन्म के बारे में शुरुआत में बहुत ही कम लोगों को पता होता है। उनकी बाल-लीलाएँ बड़ी विचित्र होती हैं। कभी-कभी अपनी बाल-लीलाओं के द्वारा वे अपने असली स्वरूप का लोगों को संकेत दे देते हैं। चैतन्य महाप्रभु की भी बाल-लीलाएँ बड़ी रोचक थीं। उनका जन्म बंगाल के नवद्वीप में हुआ था और बचपन का नाम निमाई था। उनके पिता का नाम पण्डित जगन्नाथ मिश्र और माता का नाम शचीदेवी था।

बालक निमाई बचपन में बहुत ही नटखट था। उसके माता-पिता को उसे संभालना बहुत कठिन हो जाता था। पड़ोस के लोगों के साथ भी वह बहुत ही शैतानी करता था। पड़ोस की महिलाएँ तो कभी-कभी निमाई की माँ को उलाहना भी देती थीं कि उनका निमाई बहुत नटखट है। किन्तु निमाई में ऐसा अद्भुत आकर्षण था कि सभी लोगों को उसकी शरारत में आनन्द आता था।

निमाई की उम्र तब चार-पाँच वर्ष होगी। एक बार निमाई के पिता गंगास्नान करके लौट रहे थे। मार्ग में उन्होंने एक भले ब्राह्मण को देखा। ब्राह्मण भगवान-नाम का जप कर रहे थे। निमाई के पिता ने उनसे अनुरोध किया कि वे उनके घर पर आतिथ्य ग्रहण करें। ब्राह्मण ने भी उनका अतिथि होना स्वीकार किया और वे साथ-साथ घर आए।

घर पहुँचकर निमाई के पिता ने ब्राह्मण के चरण धोए एवं उनकी पूजा की। इसके बाद उन्होंने ब्राह्मण को भोजन बनाने के लिए कच्ची सामग्री दी। उस समय निष्ठावान ब्राह्मण स्वयं अपने हाथों से रसोई बनाकर भगवान को भोग लगाने के बाद भोजन ग्रहण करते थे। निमाई की माँ ने भी भोजन बनाने की जगह को गोबर से लीप-पोतकर स्वच्छ कर दिया। ब्राह्मण ने दाल, चावल, शाक इत्यादि व्यंजन बनाए और उन्हें थाली में परोसकर भगवान के नैवेद्य के लिए रखा।

ब्राह्मण देवता अब आँखें बन्द कर मन्त्र इत्यादि बोलने के बाद भगवान को नैवेद्य अर्पण कर रहे थे। इतने में निमाई अपने छोटे-छोटे पैरों से चलकर आया और थाली में से चावल खाना शुरू किया। ब्राह्मण ने जब आँखें खोलकर देखा, तो सकपका गए। वे जोर से चिल्लाने लगे, ‘‘अरे, यह क्या हो रहा है।’’ उनका चिल्लाना सुन निमाई तो डर के मारे भाग गया। उसके माता-पिता भी वहाँ दौड़े आए। निमाई के पिता तो उसे मारने के लिए दौड़े, किन्तु वह लपककर माँ की गोद में बैठ गया। ब्राह्मण ने निमाई के पिता से कहा, ‘‘अब बच्चे को इन सब का कहाँ ज्ञान। आप इस पर गुस्सा न करें। मैं थोड़ा चना इत्यादि खाकर पानी पी लूँगा।’’

किन्तु सब लोगों ने ब्राह्मण से विनती की कि वे भोजन बनाएँ और अब ऐसा नहीं होगा। ब्राह्मण ने फिर से स्नान कर दाल-भात, शाक इत्यादि बनाया। निमाई की माँ शचीदेवी ने भी निमाई को पकड़कर रखा था कि वह फिर से कहीं गलती न कर बैठे। किन्तु शचीदेवी कुछ काम के कारण भीतर गईं और निमाई वहाँ से भाग निकला। वहाँ ब्राह्मण आँखें बन्द कर भगवान को नैवेद्य लगा रहे थे। उन्हें कुछ खटपट आवाज सुनाई दी। उन्होंने देखा कि निमाई नैवेद्य में से खा रहा है। निमाई को न देखकर माता भी वहाँ पहुँच गई और देखा कि निमाई के हाथ-मुँह दाल-भात से सने हुए हैं। अब निमाई के पिता को बहुत गुस्सा आया और वे उसे मारने ही वाले थे कि ब्राह्मण ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा, ‘‘बच्चे पर हाथ न उठाएँ। भला, इस भोले बच्चे को क्या पता। रहने दीजिए, आज शायद भोजन करना भाग्य में नहीं है।’’

इतने में निमाई के बड़े भाई विश्वरूप पाठशाला से वापस आए। विश्वरूप ने ब्राह्मण को प्रणाम किया। उन्हें सब बातें पता लग गईं। ब्राह्मण अब भोजन बनाने वाले नहीं थे। किन्तु विश्वरूप ने उन्हें बहुत आग्रह कर कहा कि

शेष भाग पृष्ठ १३९ पर

आध्यात्मिक जिज्ञासा (३९)

स्वामी भूतेशानन्द

प्रश्न – गीता भाष्य के उपोद्घात में भगवान के जन्म के सम्बन्ध में श्रीशंकराचार्य जी कहते हैं – "देहवान् इव, जात इव।" जन्म को स्वीकार करने में क्या आपत्ति होती है महाराज?

महाराज – जो नित्य हैं, वे कैसे अनित्य होंगे? यही आपत्ति है।

– तो क्या उन्होंने जन्म नहीं लिया?

महाराज – नहीं।

– किन्तु उन्होंने लोकानुग्रह किया है ! जन्म नहीं हुआ और लोकानुग्रह किया है, यह कैसे सम्भव है?

महाराज – इतना दोष देखने से क्या काम होता है। (सभी हँसते हैं) दुर्गासप्तशती में है – मधा ऋषि ने राजा सुरथ को कहा था –

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।।

(दुर्गासप्तशती १/ ६४-६६)

– वे नित्य और जगन्मूर्तिस्वरूपा हैं। उनसे ही यह सब कुछ व्याप्त है। ऐसा होने पर भी उनके विभिन्न प्रकार के प्राकट्य के बारे में मुझसे सुनिये। देवताओं की कार्यसिद्धि हेतु जब वे आविर्भूत होती हैं, तब वे नित्य होते हुए भी उत्पन्ना, आविर्भूता कही जाती हैं।

– महाराज, हमलोग तो स्वभावत: नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव हैं। हमलोगों का भी तो जन्म हुआ है। क्या हमलोगों का जन्म भी इस प्रकार से ही समझना होगा?

महाराज – नहीं, जो नित्य-शुद्ध 'मैं' है, उसका जन्म नहीं हुआ है। उसका जन्म होता भी नहीं है। जो देहाभिमानी जीव है, उसका जन्म हुआ है।

– यह जीव तो हमलोग ही हैं। जब हमलोग अपना मूल स्वरूप बोध कर लेंगे, तब समझेंगे कि हमलोग नित्य-शुद्ध हैं। तब तो यह जीव ही वास्तविक आत्मा है।

महाराज – नहीं, जीवत्व समाप्त होने के बाद जो बचेगा, वह आत्मा है। जीव ही आत्मा नहीं है। जीव और नित्य-शुद्ध आत्मा इन दोनों को हम एक साथ सोचते, कल्पना करते हैं। यही माया या मिथ्या है।

प्रश्न – महाराज ! "मैं यंत्र हूँ और तुम यंत्री हो", इस भाव को हमलोग अपने जीवन में कैसे रूपायित कर सकते हैं?

महाराज – यह सोचना कि ठाकुर ने यह बात कही है।

– कैसे विचार करेंगे? उसकी क्या प्रक्रिया है? यह अहंकार बार-बार सिर पर सवार हो जाता है।

महाराज – इसी अहंकार का नाश करना होगा। केनोपनिषद में उमा हैमवती का उपाख्यान है। अग्नि (जातवेदा), वायु (मातरिश्वा) और स्वयं इन्द्र को अहंकार हुआ था। इन लोगों ने सोचा कि ये लोग अपनी शक्ति से ही शक्तिशाली हैं। किन्तु जब ब्रह्म ने उनकी शक्ति की परीक्षा ली, तो एक छोटे से तिनके को भी ये न जला सके, न उड़ा सके। इन्हें समझ में आ गया कि इनकी कितनी शक्ति है। वैसे ही हम लोगों को भी विचार करके समझना होगा कि हमलोगों की शक्ति कितनी है। अपनी शक्ति को जानना होगा।

– तो क्या जब-जब अहंकार आयेगा, तब-तब हमलोग ऐसा ही सोच-विचार करेंगे?

महाराज – इसके अतिरिक्त दूसरा क्या उपाय है? देवताओं ने विचार किया और क्या तुम विचार नहीं करोगे?

प्रश्न – महाराज ! स्वामीजी ने एक स्थान पर कहा है कि शास्त्र की सत्यता प्रमाणित करने हेतु इस बार ठाकुर श्रीरामकृष्ण देव निरक्षर होकर आये। इसका क्या अर्थ है?

महाराज – हाँ, ठाकुर ने बिना शास्त्र पढ़े ही शास्त्र के सार तत्त्व का अनुभव किया था। इससे शास्त्र में जो लिखा है, उसकी सत्यता प्रमाणित हुई।

– क्यों, शास्त्र पढ़कर भी तो अनुभव किया जा सकता था। क्या शास्त्र पढ़ने से अनुभव नहीं किया जा सकता है?

महाराज – वह बुद्धि का व्यायाम होता, बौद्धिक अनुभव होता। शास्त्र पढ़े बिना सीधे अनुभव करना, वह प्रत्यक्ष अनुभव हुआ, माने शीघ्र अनुभव हुआ। शास्त्र पढ़कर

अनुभव करने से शीघ्र नहीं होता। शास्त्र की सहायता से शीघ्र अनुभव नहीं होता। समझे?

— हाँ, समझा महाराज !

प्रश्न — स्वामीजी एक स्थान पर कहते हैं कि संन्यास नहीं होने पर ब्रह्मज्ञान नहीं होता। क्यों?

महाराज — इसमें दो बाते हैं। एक है वैधी संन्यास और दूसरी है संन्यास अवस्था। संन्यास अवस्था नहीं होने से ब्रह्मज्ञान नहीं होता है। स्वामीजी ने इसी संन्यास अवस्था की बात को समझाया है।

प्रश्न — महाराज ! श्रीरामकृष्ण वचनामृत में है कि अन्तरात्मा में बोध होता है, इसका क्या अर्थ है?

महाराज — मन जब शुद्ध होते-होते ऐसा हो जायेगा कि भगवान और हमारे बीच में कोई आवरण नहीं रहेगा, जैसाकि ठाकुर ने कहा है – परदा स्वच्छ होते-होते ऐसा स्वच्छ हुआ कि अब पदार्थ ही नहीं, अब जो है, वही है। तभी बुद्धि शुद्ध होती है। ठाकुर ने कहा है, वही शुद्ध बुद्धि, शुद्ध आत्मा एक है। उस अवस्था में शुद्ध बुद्धि, शुद्ध आत्मा को ही अन्त:करण में बोध करती है। ठाकुर ने इस प्रकार विषय को सरल करके कहा है। इसे दार्शनिक कहेंगे – ब्रह्माकार वृत्ति के उदय होने पर ब्रह्माकारावृत्ति से भिन्न सभी वृत्तियों का लय हो जाता है। इन सब बातों से क्या समझ में आया? कुछ भी समझ में नहीं आया। ये तो केवल कहने के लिए है, शब्दाडम्बर है। ब्रह्माकारावृत्ति क्या है? क्या ब्रह्म का आकार है, उसका हाथ-पैर है कि ब्रह्माकारा वृत्ति है?

— महाराज ! ब्रह्म एक धारणा है।

महाराज — हाँ, ब्रह्म एक धारणा है। आकार का अर्थ है, जो किसी वस्तु को अन्य सभी वस्तुओं से भिन्न करता है।

— तब तो वह उपाधि हो गयी।

महाराज — हाँ ! अन्य सभी क्षेत्रों में उपाधि होगी, किन्तु ब्रह्म के क्षेत्र में उपाधि नहीं होगी, क्योंकि ब्रह्म किसी से अवच्छिन्न, आवृत्त नहीं है। यही ब्रह्म की विशेषता है। उपाधि या अवच्छिन्नता नहीं रहना ही उसकी विशेषता है। शास्त्रीय चर्चा में इन 'अवच्छेद' 'अवच्छिन्न' शब्दों का प्रयोग कर-करके पागल कर देते हैं। इनका क्यों प्रयोग करते हैं, जानते हो? अभ्यास करने के लिए। अन्य सब उपाधियों को छोड़ते-छोड़ते एकदम निरुपाधिक अवस्था के चिन्तन का अभ्यास करने के लिए ऐसा करते हैं। **(क्रमश:)**

शिवरात्रि विशेष

शिवार्चनम्

सत्येन्दु शर्मा

जपामि नित्यं जगतरणाय, नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय।
सिद्धो मन्त्रो लोकहिताय, नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय।

– मैं संसार पार करने के लिए हमेशा ॐ नम: शिवाय का जप करता रहता हूँ। लोकहित के लिये भी यह मंत्र हितकारी है।

अर्चति भक्तः सदा शिवं, लभते प्रसादं स शीघ्रम्।
प्रणतानां दु:खभाराणां कुरुते हि शम्भुर्वहनम्।।
मम शरणं बन्धविनाशाय, नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय।

– जो भक्त सदा शिव की पूजा करता है, वह तुरन्त उनकी कृपा प्राप्त कर लेता है। शरणागतों के सारे दुख-भार को शिवजी ही वहन करते हैं। संसार-बन्धन को नष्ट करने के लिए मेरी शरण है – ॐ नम: शिवाय।

दाता न हि देवः शम्भुसमः, इष्टप्रदाने स प्रथमः।
क्लेशविनाशे मुक्तिप्रदाने न कश्चित् स्वबन्धुजनः।।
क्लेशनिवारणकरणाय, नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय।

– भगवान शिव के समान कोई और दाता नहीं। अभीष्ट प्रदान करने में वे सबसे आगे हैं। क्लेशों को दूर करने और मुक्ति प्रदान करने में उनके समान कोई और अपना स्वजन नहीं है। क्लेशनिवारण करने वाला है – ॐ नम: शिवाय।

आशु प्रसीदति उमापतिर्यस्य जनस्य भक्तिरतिः।
शिवं समर्च्य संसारे भवति स जीवो मुक्तमतिः।।
अगम्य परमपदगमनाय, नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय।

– जिस भक्त की भगवान शिव पर प्रगाढ़ भक्ति हो, उस पर उमापति शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। शिवजी की अर्चना करके जीव मुक्तमति का स्वामी बन जाता है। दुर्लभ परम पद पाने का उपाय है – ॐ नम: शिवाय।

हरति त्रिशूलं त्रिपुरारिः, सर्वभयं तत्त्रिशूलम्।
भयरहितो भक्तो जगति, शिवचरणं हि सुखमूलम्।।
शिवलोकसुखार्थं जपनाय, नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय।

– त्रिपुरारी शिव अपने भक्तों के दैहिक, दैविक, भौतिक – तीनों प्रकार के शूल हर लेते हैं और उनका अस्त्र त्रिशूल समस्त भय को दूर भगा देता है। उनका भक्त संसार में निर्भय हो जाता है। भगवान शिव के चरण में ही सुख का मूल है। इसलिए शिवलोक का सुख प्राप्त करने जपने लायक मंत्र है – ॐ नम: शिवाय।

OOO

आध्यात्मिक जीवन हेतु उपयोगी बातें

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

आध्यात्मिक जीवन बिताने के लिए मन को बहुत समझाना पड़ता है। मन का स्वभाव है, वह शत्रुता और मित्रता में अटकता है। हमारा मन संसार के कार्यों में लगातार लगा रहता है। उसको बीच-बीच में भगवान की ओर लगाने से हमारी संसार की धारा बीच-बीच में खंडित होकर भगवान की ओर जायेगी। मन सांसारिक कार्यों को करते-करते उसी का अभ्यस्त हो जाता है, इसलिये भगवान की ओर ले जाने के लिए उसे तैयार करना पड़ता है। उसे भगवान का नाम लेने की आदत डालनी चाहिए। बार-बार आदत डालने से मन भगवान की ओर जाता रहता है। हमें मन को व्यावहारिक आध्यात्मिकता के द्वारा भगवान में लगाने के लिये अभ्यस्त करना है। अभ्यास से भगवान में मन लगेगा। भगवान में मन लगने से दुखों का अन्त हो जायेगा। इसके लिये हम छोटे-छोटे प्रयत्न करें। छोटे-छोटे कार्यों को भगवान से जोड़ें। छोटे प्रयत्न से बड़े प्रयत्न में सहायता मिलेगी। उससे हमारा मन भगवान की ओर उन्मुख होगा। तब हमारा मन सन्तुलित होगा और जीवन में शान्ति आयेगी। बाहरी विघ्न-बाधाएँ आने पर भी हमारा मन बिलकुल विचलित न हो, अचल रहे, ऐसी दृढ़ निष्ठा और विश्वास मन में होना चाहिये। सतत भगवान का नाम और प्रार्थना करने से विघ्न-बाधाएँ दूर हो जाती हैं।

हमें सदा सत् का आश्रय लेना चाहिए। सत् माने भगवान होता है। हमें सदा भगवान का आश्रय लेना चाहिए। सदा भगवान का आश्रय बना रहने से सुरक्षा होती है, आनन्द होता है। संसार को भगवान ने ही बनाया है। सबके आश्रय भगवान ही हैं। अत: संसार को न पकड़कर भगवान को ही पकड़ना चाहिए। भगवान हमें ऐश्वर्य भी देते हैं। ऐश्वर्य यानि वे हमें सद्गुण प्रदान करते हैं।

हमलोगों को अपनी त्रुटियों का निरीक्षण कर उन्हें कम करना चाहिए। हमारी बुद्धि सारी दुनिया को पकड़ लेती है, किन्तु भगवान को नहीं पकड़ती, वह भगवान को भुलाकर रखती है। इसलिए हमारी बुद्धि जब तक स्थिर नहीं होती, तब तक संसार में आनन्द से नहीं रह सकते। हमारी इच्छाएँ साधना में बहुत बड़ी सहायक और बहुत बड़ी बाधक भी हैं। संसार में जो सुखी रहना चाहते हैं, उन्हें अपनी आवश्यकतानुसार साधनों का उपयोग करना चाहिये, अनियन्त्रित इच्छाओं के अनुसार जीवन को संचालित नहीं करना चाहिये। साधना करने के लिए अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। जो काम हमको बहिर्मुख करता है, उसको बन्द कर जिस भी परिस्थिति में हो, तुरन्त साधना शुरू कर देनी चाहिए।

दैनिक जीवन में हम अपने दिन की शुरुआत भगवान के नाम से करें। जब हम सोकर उठते हैं, तब हमारा दिन शुरू होता है और रात में सोते तक दिन समाप्त होता है। जब हम सबेरे उठें, तो सबसे पहले भगवान का नाम लें। सबेरे उठकर दूसरी कोई भी बात न करें। उठते ही भगवान का नाम-स्मरण, दर्शन करना चहिए। दिन की शुरुआत भगवान के नाम से करें। रात में सोते समय भी अच्छा ग्रन्थ पढ़ें या श्रीरामकृष्णवचनामृत पढ़ें और अन्त में भगवान का नाम-जप और भगवान से प्रार्थना करके ही शयन करें।

प्रार्थना दो प्रकार की होती है। एक प्रार्थना है, जिसमें हम भगवान से कुछ माँगते हैं। दूसरी प्रार्थना है, जिसमें हम भगवान का गुणगान करते हैं। भगवान का गुणगान करते समय मन को शान्त रखें। शान्त मन से भगवान का गुण-गान करें। मन को शान्त रखने के लिए भगवान का गुण-गान करना पड़ेगा। इन सबके लिए अपने गुरु का दिया हुआ मंत्र सहायता करेगा। रातभर नींद न आये, तो अपने गुरु द्वारा दिया गया इष्ट-मंत्र का जप करते रहो और इष्ट का ध्यान करो।

भगवान का स्मरण करते हुए दिन बिताओ। समस्या का समाधान भगवान स्वयं कर देते हैं। अपने इष्ट से बातचीत करने की आदत डालो। ईश्वर हमारे जीवन के संचालक हैं। वे ही संसार को चलाते हैं। वे सभी विघ्न-बाधाओं को दूर कर अनुकूल परिस्थिति प्रदान करते हैं। इसलिये सबेरे सबसे पहले हमारे मन में इष्ट का नाम आना चाहिए। भगवान का नाम लेने से सब शुद्धि हो जाती है। जप में मन न लगे, तो भगवान से प्रार्थना करें। भगवान के स्मरण-मनन से दिनचर्या शुरू करें। आध्यात्मिक जीवन बिताने के लिए ये बहुत उपयोगी बातें हैं। ऐसा तीन महीने करने से अपने आप सुन्दर भगवद्भाव बन जायेगा। OOO

मेरी दृष्टि में श्रीरामकृष्ण

अरविन्द घोष

अनुवाद - लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला, दिल्ली

(श्रीअरविन्द युगावतार भगवान श्रीरामकृष्णदेव से अत्यन्त प्रभावित थे। वे उच्चकोटि के कवि, साहित्यकार और दार्शनिक थे। 'ईश उपनिषद' के पृष्ठ ५८७ पर उन्होंने अपनी विद्वत्तापूर्ण अद्भुत शैली में श्रीरामकृष्णदेव का गौरवपूर्ण वर्णन किया है।)

श्रीरामकृष्ण का साक्षात् अनुभव वेद और विज्ञान की ज्योति से प्रकाशमान है। हमें प्रयोग (experiment) व अनुभव के द्वारा ऐसी क्षमता विकसित करनी होगी, जो सत्य का सीधे-सीधे साक्षात्कार करा सके। अप्रत्यक्ष रूप से या अनुमान व निष्कर्ष द्वारा इस स्थिति में पहुँच कर हमें संतोष नहीं करना है। सत्य के सीधे साक्षात्कार के उपरान्त उच्चतर सत्य क्रमश: प्रकाशित होते जायेंगे। आत्मा का खोया हुआ साम्राज्य हमें पुन: प्राप्त हो जायेगा। जो ज्ञान से परे है, उसका ज्ञान हो जायेगा, अनन्त से हमारा सम्बन्ध हो जायेगा, अनन्त की वास्तविकता की पहचान हो जायेगी तथा दृश्यमान ससीम में असीम के दर्शन हो जायेंगे। तब हम बुद्धि व जड़ पदार्थ के चांदी और ताम्बे के सिक्के नहीं बटोरेंगे, अपितु आत्मा के स्वर्ण को प्राप्त करेंगे। हम छोटी-से-छोटी मुद्रा में आत्मा का, शारीरिक व मानसिक प्रभाव का अनुभव करने में सफल होंगे। छोटी-से-छोटी कौड़ी या पैसे की भी अवहेलना नहीं करेंगे। क्योंकि सभी ईश्वरीय हैं। हम उनका प्रयोग उच्च मुद्रा के छोटे प्रतीक के रूप में करेंगे। उसी का सत्य व स्वनिर्धारित मूल्य होता है। वेद और वेदान्त हमें इस ज्ञान और आत्मा का वस्तुओं में दर्शन का आश्वासन देते हैं। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए हमें अगले जन्म या अन्य लोकों में जाने की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी। वर्तमान जीवन में इसी मर्त्य शरीर में यह स्थिति प्राप्त होगी, इहैव।

यह कोई नयी बात नहीं है। प्रागैतिहासिक समय से भारत की पीढ़ियों में प्रत्येक शताब्दी में ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने यह स्थिति प्राप्त की है। योग हमें यह ज्ञान प्रदान करता है कि हमारी आन्तरिक शक्ति अनन्त गुना मूल्यवान है। इस शक्ति के लिए ही हमें साधना करनी होगी। जड़ पदार्थों में और मानसिक प्रक्रियाओं में हमें ईश्वर के अवतरण के दर्शन करने होंगे। हम ईश्वर को न केवल जान सकते हैं, अपितु ब्रह्म बन सकते हैं।

यह आश्वासन भारत उन दीक्षार्थियों (जिज्ञासुओं) व साधकों को युगों से देता आया है, जिन्होंने इसके लिये तपस्या की है। आज पुन: भारत जगत के सामने ऐसा उदाहरण प्रस्तुत कर रहा है। यह दिव्य नैवेद्य है। पृथ्वी के एक अप्रसिद्ध कोने में आविर्भूत महापुरुष मुझे ईश्वर का अवतार तथा प्रकाशपुंज लगते हैं। वे महापुरुष हैं दक्षिणेश्वर के परमहंस श्रीरामकृष्ण। उनकी प्रसिद्धि किसी प्रवचनों या उपदेशों के लिए नहीं हैं, जो वे छोड़ गये हैं, न कोई अत्यन्त प्रतिबंधित व सीमित रहन-सहन के लिये है, न किसी नैतिक विधान के लिए है, न पृथ्वी की व्याधियों की किसी रामबाण दवा के लिए है, अपितु उनकी महत्ता इसलिए है कि पुन: उन्होंने जगत् में अद्वितीय पूर्णता व उदारता का एक उदाहरण प्रस्तुत किया है, जो वेदान्त के माध्यम से आन्तरिक दर्शन और अनुभूति प्रदान करता है। एक अशिक्षित, दरिद्र और अज्ञात बंगाली किसान, जिन्होंने अपने जीवन के अन्त तक बोल-चाल में अत्यन्त देहाती ग्रामीण भाषा का प्रयोग किया, जिन्हें न संस्कृत का ज्ञान, अपनी देहाती बोली के अलावा किसी अन्य भाषा का भी ज्ञान नहीं, किसी दर्शन और विज्ञान का ज्ञान नहीं, जगत् से अनभिज्ञ, लेकिन उन्होंने युगों की आध्यात्मिक प्रज्ञा प्राप्त कर ली। वे हमारी आन्तरिक अत्यन्त कठिन गहन समस्याओं तथा आध्यात्मिक प्रश्नों के ऐसे सरल समाधान बताते थे कि अत्यन्त विद्वान पंडित भी उनके ज्ञान से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते थे।

उन्होंने किस पद्धति से इस जीवन्त ज्ञान-कोष को प्राप्त किया? उन्होंने इसे बौद्धिक प्रक्रिया से, किसी तर्क प्रणाली से नहीं प्राप्त किया। अत्यन्त प्रारंभिक बुद्धि से भी वे मीलों दूर थे। वे एक बालक की तरह सरल थे, अपने छोटे-से गाँव के बिलकुल अशिक्षित ग्रामीण से भी अधिक अशिक्षित थे। पर व्यक्ति के उद्देश्य और हृदय को समझने की उनकी अचूक दृष्टि थी। किन्तु वह विचार की दृष्टि नहीं थी, वह दिव्य दृष्टि थी, अन्तर्दृष्टि थी। आधुनिक विकास बहुत आगे बढ़ गया है, फिर भी विश्व में ऐसा उदाहरण नहीं है, जहाँ बौद्धिक प्रक्रिया या तर्क प्रणाली का ज्ञानप्राप्ति के लिए उपयोग नहीं किया गया हो। बिना बौद्धिक प्रक्रिया के भी

ऐसे आश्चर्यजनक परिणाम परमहंस को प्राप्त हुए। उनके ज्ञान का रहस्य था कि जीवन में वे प्रत्येक वस्तु को गहन दृष्टि से देखते थे। जहाँ व्यक्ति केवल तर्क करता है और विचारों को भावनाओं में परिणत कर लेता है, वहाँ वे हृदय से तथा चेतना के उच्चस्तर से देखते थे। अपनी अन्तर्दृष्टि से अनुभव करते थे। अनुभूति की शक्ति का उपयोग करते थे। आधुनिक मानव अपनी इन शक्तियों को लंबे समय से खो चुका है। परमहंस की आत्मा सत्य का दर्शन करती थी। गहराईयाँ उनसे कुछ भी छिपा नहीं पाती थीं तथा ऊँचाइयों में उनका प्रवेश हो जाता था। उन्होंने हमें स्पष्टत: और सम्पूर्णत: बिना किसी गोपनीयता अथवा दुर्बलता के विचारों की अपेक्षा सत् की महत्ता दिखाई, किन्तु यह सत् मनुष्य की इन्द्रिय अथवा भावनात्मक स्तर पर न होकर आत्मा के स्तर पर और मनुष्यत्व के केन्द्रीय स्तर पर भी था । इसलिए वे पारम्परिक योग की सीमाओं का अतिक्रमण कर सके। प्रत्येक विधा के अनुसार अलग-अलग साधना की तथा तीन दिन में वह उपलब्धि कर ली, जिसको प्राप्त करने में उच्च स्थिति में पहुँचे योगियों को भी अनेक वर्ष लग जाते हैं। कभी कभी एक जन्म में वह उपलब्धि नहीं होती है, अनेक जन्म लग जाते हैं। उन्होंने धर्म की सीमाओं को तोड़ा तथा स्वयं साधना कर ईसामसीह और अल्लाह की अनुभूति प्राप्त की, पर हमेशा वे पूर्ण रूप से शाक्त हिन्दू रहे। गुरु परम्परा की सीमा का अतिक्रमण किया। औपचारिकता एवं अनुशासन के लिए मानवीय गुरुओं का शिष्यत्व ग्रहण किया। (भैरवी-जटाधारी-तोतापुरी के पास वे नहीं गए, बल्कि स्वयं वे गुरु उनसे आकर्षित हुए)। उनको सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ ज्ञान सीधे जगन्माता (काली) से मिला, उनके हृदयस्थ विश्वगुरु से मिला। तत्त्व-ज्ञान की विधाओं के परे उन्होंने वेद और वेदान्त के माध्यम से द्वैत तथा अद्वैत के गहन सम्बन्ध को समझा कि दोनों अनुभव में एक ही हैं। हमारे आध्यात्मिक जीवन की अपूर्णताओं को समझ कर उनके दोषों का महादेव की तरह विषपान किया। अपने व्यक्तित्व की गहरी घाटियों में सारे आकार व मुखौटों को डुबा दिया तथा हमें इन सबसे परे जो पूर्ण है, सर्वश्रेष्ठ है, दिव्य है का अनुभव कराया। आन्तरिक अनुभव और दर्शन ही सर्वोच्च ज्ञान का साधन है। परमहंस मानव जाति के बीज-जीवन हो गये। मानव तर्क की घाटियों में युगों से उलझा हुआ था। इस बीज ने मानव की बुद्धि और तर्क की जंजीरों को ढीला किया। उसे सीधे उस रास्ते पर लाये, जो शिखर स्थित आत्मा तक ले जाता है। ○○○

प्रेरक लघुकथा

खींच लो कृपाण, पड़े रहने दो म्यान

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

बड़ोदा के राजा आनन्दराव गायकवाड़ की संतान न होने पर उन्हें राज्य के भविष्य की चिन्ता सताने लगी। आखिर उन्होंने दत्तक पुत्र लेने का विचार किया। उन्होंने एक मंत्री को सुयोग्य कुमारों को प्रस्तुत करने का आदेश दिया। मंत्री ने १५ कुमारों का चयन किया।

राजा ने सबको एक कमरे में बिठाकर पड़ोस के कमरे में रखी हुई वस्तुओं में से कोई एक मनपसंद चीज उठाकर एक-एक करके लाने को कहा। कमरे में नाना प्रकार की स्वादिष्ट मिठाइयाँ, खिलौने, कीमती वस्त्र, आभूषण, घड़ियाँ आदि रखी हुई थीं। एक-एक कुमार अपनी-अपनी पसन्द की चीज लेकर राजा के कमरे में आया। उनमें एक कुमार ऐसा था, जो एक-एक वस्तु के पास जाकर खड़ा हो गया। उसे हर वस्तु भा गई थी। मगर जब उसे दीवार पर म्यान दिखाई दी, तो उसने उसमें से तलवार निकाल ली। लपलपाती तलवार देख वह प्रसन्न हो गया। वह सोचने लगा कि उसे राजा बनना है और तलवार राजा का आभूषण होता है। इसी के द्वारा वह अपनी और राज्य की रक्षा कर सकता है। अन्य चीजें तो क्षणिक आनन्द देने वाली होती हैं। वह तलवार लेकर राजा के कमरे में आया।

राजा आनन्दराव जान गए कि यह बालक तलवार की महत्ता को भलीभाँति जानता है। इसीलिए उसने अन्य वस्तुओं के लालच में न पड़कर वीरों की आन-बान-शान की प्रतीक तलवार को पसन्द किया है। राजा ने उसे ही गोद लिया। इसी बालक ने बाद में सयाजीराव गायकवाड़ नाम से कीर्ति अर्जित की।

भारतभूमि वीरों की वसुन्धरा है। देश और राज्य की रक्षा के लिये रणबांकुरों ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी। तलवार वीरों को निर्भीक, जुझारू और देश के लिये मर-मिटने की प्रेरणा देती है। ○○○

ईशावास्योपनिषद (१५)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उन्होंने यह प्रवचन संगीत कला मन्दिर, कोलकाता में दिया था। – सं.)

पहले त्रिक् में विद्या और अविद्या के बारे में कहा गया। अविद्या में मृत्यु को पार करने की भारी क्षमता है। विद्या में भी भारी क्षमता है, किसकी क्षमता है? उसमें अमरत्व को प्रदान करने की क्षमता है ! असंभूति में भारी क्षमता है, किसकी क्षमता है? अरे तुमको वह मृत्यु के पार करा देगी और उसी प्रकार संभूति में भारी क्षमता है, वह अमरत्व प्रदान करेगी। सामाजिक साधना तुम्हें कब अमरत्व प्रदान करेगी? जब यह ईश्वर के साथ जुड़ेगी, तब। जो आत्मतत्त्व को इन दोनों के साथ जानता है, इसका मतलब क्या है? जो कर्म और ज्ञान के साथ आत्मतत्त्व को जोड़ देता है। संभूति, असंभूति, व्यक्तिगत साधना और सामाजिक साधना इन दोनों को लेकर के चलें। दोनों हमारे लिये अद्भुत रूप से कल्याणकारी बनते हैं।

यह ईश्वर या आत्मतत्त्व हमारे लक्ष्य के रूप में उपस्थित होता है, तो कर्म और ज्ञान, इन दोनों की साधनायें अद्भुत हो जाती हैं। व्यक्तिगत साधना, सामाजिक साधना, ये दोनों के दोनों हमारे लिए मानों अमृतत्व का मार्ग खोलकर रख देती हैं। ईशावास्योपनिषद का यह मन्त्र समन्वय सेतु है। जैसाकि हमने कहा कि तुम कर्म को हीन क्यों मानते हो? ज्ञानियों से कह दो कि अरे यह कर्म ही तो तुम्हारे काँटे निकालेगा, यही तो तुम्हारे बन्धन को काटेगा। कर्म न करो, तो तुम्हारा कर्म-बन्धन नहीं कटेगा। कर्मवाले से क्या कहा? उनसे कहा कि अरे ! यदि तुम ज्ञान को साथ लेकर न चलो, तो अमरत्व कहाँ मिलेगा? तुम हरदम भयभीत होते रहोगे। यह ज्ञान ही तुम्हारे जीवन में ऐसा अद्भुत अमृतत्व लाकर रख देगा कि तुम डरोगे नहीं, तुम्हारे जीवन से भय बिल्कुल निकल जायेगा।

मैंने परीक्षित का उदाहरण देकर बताया था कि महाभारत के परीक्षित और भागवत के परीक्षित में कितना अन्तर है! दोनों में महान अन्तर है। भागवत के परीक्षित बन गये ज्ञानी, उनके जीवन में भय नहीं है, अमृतत्व उनके जीवन में उतर आया है। मृत्यु तो दोनों की हुई और सातवें दिन हुई, पर भागवत के जो परीक्षित हैं, विलक्षण है ! ज्ञान जो सुना, उस ज्ञान के द्वारा उनके जीवन में अमरत्व उतर आया, सारा भय समाप्त हो गया। इसलिये यहाँ पर कहा गया कि कर्म और ज्ञान इन दोनों को जीवन में समन्वित करके हम चलें। व्यक्तिगत साधना और सामाजिक साधना, आत्मनो मोक्षार्थम् – अपनी मुक्ति के लिए और जगद्धिताय च – जगत के कल्याण के लिए, दोनों हमारे जीवन के माध्यम से साथ-साथ चलते रहें। ईश्वर उनका केन्द्र रहे, आत्मतत्त्व केन्द्र रहे, तो यह साधना बलवती होती है।

ठीक है, हमने कर्म और ज्ञान को साथ ले लिया, व्यक्तिगत साधना और सामाजिक साधना भी हमारी चलती रही, ईश्वर और आत्मतत्त्व को ही लक्ष्य बना लिया, जब हम ऐसी साधना करते हैं, तब क्या होता है? जब शिष्य ने उपदेश सुना, तो उसके भीतर में क्या भाव उत्पन्न हुआ, शिष्य पर उसका क्या प्रभाव हुआ, उसको पन्द्रवें मन्त्र में बताया गया है। अन्त के उन चार श्लोकों पर चर्चा कल होगी। हरि ॐ तत् सत्।

(तीसरा प्रवचन) – कल हमने कहा था कि कर्म में आत्मा का योग न हो, तो वह कर्मभोग है, विद्या में आत्मा का योग न हो, तो विद्या भी एक भोग है।

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यान-कौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद् भुक्तये न तु मुक्तये।।

ऐसी विद्या केवल भोग की हो जाती है। पर यदि आत्मतत्त्व को इन दोनों से युक्त करके जानें, तो कर्म कर्मयोग हो जाता है और वह मनुष्य को मृत्यु से पार कराता है। विद्या क्या हो जाती है? विद्या के भीतर में जो अमृतत्व छिपा हुआ है, वह छिपा हुआ अमृतत्व निकल आता है और वह हमारे जीवन को अमिय बना देता है। उस पीयूष से हमारे जीवन को भर देती है। विद्या और कर्म के भीतर में निहित इस क्षमता को हमें आत्मा से जोड़कर के प्रकट करना है।

यदि विद्या में आत्मतत्त्व नहीं है, तो वह केवल knowledge (सूचना) है और विद्या में जब आत्मतत्त्व जुड़ जाये, तो वह wisdom (ज्ञान) है। बर्टड रसल नास्तिक

थे। वे ईश्वर में विश्वास नहीं करते थे, पर मानवतावादी थे। उन्होंने knowledge और wisdom इन दो शब्दों का बड़ा सुन्दर उपयोग किया है। The Impact of Science and Society उनका एक ग्रन्थ है, उसमें वे एक स्थान पर बड़ी सुन्दर बात लिखते हैं - We are in the middle of a race between human skill as to means and human folly as the ends. Given sufficient folly as to ends every increase in the skill required to achieve them is to the bad. The human race has survived hitherto owing to the ignorance and imcompetent, but given knowledge and competence combined with folly there can be not certainty of survival. Knowledge is power but its power for evil as much as for good. It follows therefore unless man increase in wisdom as much as in knowledge, increase of knowledge will be increase of sorrow.

कैसी अद्भुत बात उन्होंने कही, knowledge और wisdom इन दो शब्दों का उपयोग किया। knowledge क्या है? knowledge वह है, जो हमें विज्ञान से मिलता है, जो इन्द्रियाँ हमें लाकर के देती हैं। इस विज्ञान के युग में हमारा knowledge बहुत बढ़ रहा है। बर्टंड रसल कहते हैं - knowledge बढ़ तो रहा है, पर तनाव भी उतने ही बढ़ रहे हैं, दुख भी उतना ही बढ़ रहा है। आज दुनिया एक विस्फोट के कगार पर क्यों है? इसलिए कि knowledge तो बहुत बढ़ गया, पर उस अनुपात में wisdom नहीं बढ़ा। wisdom क्या है? बर्टंड रसल से पूछा गया - आपने knowledge की व्याख्या की। जो विज्ञान से जानकारी हमें मिलती है, आपने उसे knowledge कहा। आपकी दृष्टि में wisdom क्या है? बर्टंड रसल ने wisdom की भी कितनी दार्शनिक व्याख्या की है। वे बड़ी विचित्र बात कहते हैं - "The essence of wisdom consists in imancipation as for as possible from the tyranny of the here and the now." । here = यहाँ, यह देशवाचक है और now = अब, यह कालवाचक है। तो देश और काल का जो अत्याचार मनुष्य पर हो रहा है, उस अत्याचार से यथाशक्ति छुटकारा पाने में wisdom का सार है। यह व्याख्या बर्टंड रसल दे रहे हैं। इस दृष्टि से यहाँ पर हम इन दोनों शब्दों को समझ सकते हैं। knowledge माने अपरा विद्या, जिसे अविद्या कहा गया, जो कर्म है, यह knowledge है और उन्होंने जिसे wisdom कहा है, वह परा विद्या है। विद्या आत्मा के साथ युक्त नहीं है, तो वह knowledge है। जब विद्या आत्मा के साथ युक्त है, तो वह wisdom है। जो विद्या आत्मा के साथ युक्त न हो, तो वह मानो और भी गहरे अन्धकार में ले जाती है। कितने गहरे अन्धकार में? इतने गहरे कि समूल नाश हो सकता है। मनुष्य के पास बहुत जानकारी हो और उस पर wisdom का नियंत्रण न हो, विवेक का नियंत्रण न हो, तो कितना खतरा वह विद्या पैदा कर सकती है। आज हम देख ही रहे हैं, ये जो बड़े देश हैं, बड़ी शक्तियाँ हैं, जो प्रमुख हैं, उनके मस्तिष्क का एक केन्द्र थोड़ा-सा हटकर के चले, तो दुनिया नष्ट हो सकती है।

ईशावस्योपनिषद में यही कहा गया कि जो अविद्या की, कर्म की उपासना करते हैं, वे गहरे अन्धकार में जाते हैं और जो विद्या में रत हैं, वे मानो और भी गहरे अन्धकार में जाते हैं। वे तो समूची मानवता का नाश अपने साथ कर देंगे। इसलिए विद्या और अविद्या दोनों का फर्क अलग-अलग बताया गया है। अविद्या से, कर्म करने से कहाँ जाते हैं? पितृलोक जाते हैं। विद्या से कहाँ जाते हैं? देवलोक जाते हैं। चाहे पितृलोक जाओ, चाहे देवलोक जाओ, ये दोनों ही भोग योनियाँ हैं। इसके बाद कहा कि यदि तुम इन योनियों के चक्कर में नहीं पड़ना चाहते हो, आत्मतत्त्व की उपलब्धि करना चाहते हो, तो अविद्या और विद्या के साथ आत्मा को जोड़ो। हम ज्योंहि अविद्या के साथ आत्मतत्त्व को जोड़ते हैं, मानों यह आत्मतत्त्व Catalytic agent के समान हो जाता है। आयुर्वेद शास्त्र में मानों वह अनुपान के समान हो जाता है। अनुपान का मतलब? यदि हम अनुपान के साथ दवा ग्रहण करें, तो जो दवा का गुण है, जो दवा की शक्ति है, वह शक्ति अनुपान से मिलने के बाद प्रकट होती है। वैद्यराज कहते हैं - भस्म दे रहा हूँ, इसका अनुपान शहद है या मैं अमुक दे रहा हूँ, इसका अनुपान यह है। इसका मतलब क्या हुआ? अर्थात् दवा के गुण अनुपान के साथ मिलने पर प्रकट हो जाते हैं। वैसे ही कर्म के भीतर कर्म को काटने की क्षमता है। पर यह क्षमता कब प्रकट होगी? जब आत्मतत्त्व रूपी अनुपान के साथ कर्म को मिला दें तब। कर्म को काटने की क्षमता कर्म से ही प्रकट होगी। विद्या के भीतर कौन-सी क्षमता है? विद्या में अमृतत्व देने की क्षमता है, पर आत्मतत्त्व का अनुपान मिलाना पड़ेगा। अनुपान मिलने से Catalytic agent आ जाने से, विद्या के भीतर जो आत्मतत्त्व देने की क्षमता है, वह क्षमता प्रकट हो जायेगी। **(क्रमशः)**

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (३१)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

आधुनिक मानव और समन्वयात्मक योग

मनुष्य की सारी भाग-दौड़ सच्चा सुख और शान्ति प्राप्त करने के लिए ही है। उसे लगता है कि धन-सम्पत्ति से मुझे बहुत सुख-शान्ति मिलेगी, इसलिए उसे पाने को दौड़ता है। परन्तु कहीं भी सुख-शान्ति मिलती नहीं है। कस्तूरी-मृग जैसी उसकी दशा है। मृग की नाभि में जो कस्तूरी है, उसे प्राप्त करने के लिये वह सर्वत्र भटकता रहता है। एक भजन में कहा गया है, "नाभि कमल में है कस्तूरी, वृथा मृग फिरै बन का रे।" जो वस्तु स्वयं के अंदर है, उसे बाहर खोजने से वह कैसे मिलेगी? उसकी खोज में बाहर भटक-भटक कर उसका जीवन समाप्त हो जाता है। मनुष्य का हाल भी ऐसा ही है। सुख और शान्ति का स्रोत उसके अन्दर ही है, लेकिन वह मृग की तरह बाहर भटक-भटक कर अन्त में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, उसे सच्ची शान्ति नहीं मिलती है।

शाश्वत शान्ति तो मनुष्य की आत्मा में है। जिसे शाश्वत शान्ति प्राप्त करनी हो, उसे आत्मा में रहना चाहिए। यद्यपि, दैनिक जीवन में शान्ति-प्राप्ति के उपायों का आचरण करने से कुछ समय में मन शान्त हो जाता है, शान्ति का अनुभव होता है, परन्तु वह शान्ति स्थायी नहीं होती है, वह चेतना का भाग नहीं बनती है। सच्ची और स्थायी शान्ति एकमात्र भगवान में है। इसलिए जब तक अपने अन्दर स्थित भगवान के साथ हम एकरूप नहीं होते, तब तक उस शान्ति को हम कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

कठोपनिषद में कहा गया है –

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्
एको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः
तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।। (२/२/१३)

जो अनित्य पदार्थों में नित्यस्वरूप तथा ब्रह्मा आदि चेतनों में चेतन है, और जो अकेला ही अनेकों कामनाएँ पूर्ण करता है, अपनी बुद्धि में स्थित उस आत्मा को जो विवेकी पुरुष देखते हैं, उन्हीं को नित्य शान्ति प्राप्त होती है, औरों को नहीं।

शाश्वत शान्ति भगवान ने स्वयं अपने पास रखी है। जो भगवान को बुलाते हैं, उन्हें प्रेम करते हैं, उन्हें जानते हैं, उन्हें ही यह शान्ति वे देते हैं। भगवान भोग, ऐश्वर्य सब देते हैं, परन्तु यदि शान्ति चाहिए, तो पहले अन्तर में स्थित भगवान के साथ एकरूप होना पड़ेगा, उसके बाद ही शान्ति मिल सकती है। छान्दोग्य उपनिषद में भी कहा गया है –

यो वै भूमा तत्सुखम् न अल्पे सुखमस्ति।

सीमित पदार्थों से आनन्द नहीं मिल सकता है, अनन्त से ही सत्य, परम सुख की प्राप्ति होती है।

इस अनन्त की प्राप्ति किस प्रकार होती है? जो समग्र ब्रह्माण्ड में व्यापक है, वही हमारे अन्तर में भी है। हमारे सबसे अधिक निकट है। उसे कहीं बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं है। एक बार अन्दर दर्शन हो जाए, तो फिर बाहर भी सर्वत्र उसके दर्शन होंगे। लेकिन यदि वे अन्दर हैं, तो दिखाई क्यों नहीं देते हैं? श्रीरामकृष्ण से भी उनके भक्तों ने ऐसा ही प्रश्न पूछा था, तब उन्होंने एक तौलिया लेकर अपना मुँह ढक लिया और फिर कहा, "अब तुम मुझे देख नहीं सकते हो, उससे क्या मैं तुम्हारे निकट नहीं हूँ? यह पर्दा बीच में है, इसलिये देख नहीं सकते हो।" इसी प्रकार अज्ञानरूपी पर्दे के कारण मनुष्य स्वयं के अन्दर स्थित परमात्मा के दर्शन नहीं कर सकता है। इस अज्ञान के पर्दे को हटा दो, तब तुम्हें पता चलेगा कि परमात्मा तुम्हारा स्वयं का ही स्वरूप है।

इस अज्ञान के पर्दे को कैसे दूर करें? इस पर्दे को हटाने का कोई एक उपाय नहीं है। कोई भक्ति द्वारा, कोई ज्ञान द्वारा, कोई ध्यान द्वारा, तो कोई निष्काम कर्म और सेवा द्वारा, इस अज्ञान रूपी पर्दे को हटा सकता है। इस प्रकार परमात्मा को प्राप्त करने के लिए मुख्य चार मार्ग हैं – राजयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग। इनमें से किसी भी एक मार्ग का अनुसरण करके, चारों का समन्वय करके परमात्मा की प्राप्ति कर सकते हैं। गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने भगवत्प्राप्ति और शाश्वत शान्ति के लिए इन चारों मार्गों का अनुसरण करने को कहा है।

राजयोग – महर्षि पतंजलि ने अपने योगसूत्रों में राजयोग की साधना द्वारा परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग

बताया है। इस योग के आठ सोपान हैं – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन सोपानों पर चढ़ते-चढ़ते फिर ध्यान सिद्ध होता है। चित्त रूपी सरोवर में सभी तरंगों का शमन हो जाता है। मन ध्यान में लीन हो जाता है। फिर आठवाँ सोपान निर्विकल्प समाधि प्राप्त होती है। तब सभी कुछ ब्रह्ममय हो जाता है। अनन्त सुख, अनन्त शान्ति और अनन्त आनन्द की प्राप्ति होती है। राजयोग में मन पर नियंत्रण किया जाता है। मन पर संयम के बिना एकाग्रता नहीं होती है। इस सम्बन्ध में श्रीकृष्ण भगवान गीता (२/६६) में कहते हैं –

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।।

– न जीते हुए मन और इन्द्रियों वाले पुरुष में निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती और उस अयुक्त मनुष्य के अन्त:करण में भावना भी नहीं होती तथा भावनाहीन मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती और अशान्त मनुष्य को सुख कैसे मिल सकता है?

ज्ञानयोग – श्रीरामकृष्ण देव ने ज्ञानयोग को सरल ढंग से समझाया है। वे कहते हैं, ''हमेशा सत्-असत् का विचार करो। ईश्वर ही सत् अर्थात् नित्य हैं और अन्य सब असत् अर्थात् अनित्य है। इसी प्रकार विचार करते-करते अनित्य वस्तुओं का मन से त्याग करो।'' इसे ज्ञानयोग कहते हैं। इसमें ईश्वर का चिन्तन करते-करते दिव्य अनुभूति होने लगती है। अनुभूति होने के बाद अज्ञान का पर्दा हट जाता है और अन्दर स्थित परम तत्त्व का दर्शन होता है। श्रीरामकृष्ण देव ज्ञानमार्गी को बन्दर के बच्चे की उपमा देते हैं। बन्दरिया का बच्चा अपनी माँ को पकड़े रखता है। बच्चे की पकड़ ढीली होने से, उसके छूटकर गिरने की भी सम्भावना होती है। इसमें ईश्वर का चिंतन करना, ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करना, व्यक्ति को स्वयं ही करना होता है। इसलिये व्यक्ति को पूरी सावधानी रखनी पड़ती है, नहीं तो पतन का भय इस मार्ग में बना रहता है। परन्तु सजग रहकर स्वयं प्रयत्न करने से ज्ञानी शीघ्रता से साक्षात्कार कर सकता है। गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।४/३८।।

जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है तथा ज्ञान को प्राप्त कर वह अविलम्ब, तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है। **(क्रमशः)**

इस बार की शिवरात्रि

व्रजवासी बाबा

श्रद्धा और विश्वास की हैं दोनो मूर्ति,
प्रेम के अवतार शिव और पार्वती।
चार पहर में चार बार होती है आरती,
काम का दमन करे इस बार की शिवरात्रि।।
ब्रह्म का ज्ञाता ब्राह्मण होता,
त्रिगुणों का क्षय करे क्षात्री।
स्वयं शिव कृपा कर मिटात हैं द्वैतबुद्धि,
क्रोध का शमन करे, इस बार की शिवरात्रि।।
एक पहर का एक वर दो पुरारि,
भक्ति का वरदान हमको दे खरारि।
जानकर स्वरूप की छूटें सभी उपाधि,
लोभ का लोप करे इस बार की शिवरात्रि।।
सो रहा है चौरासी के मार्ग में यात्री,
हो जागरण उसका बीते दीर्घ मोह-रात्रि।
आत्मा के प्रकाश में जीव शिव से मिले,
मोह का अन्त करे, इस बार की शिवरात्रि।।

पृष्ठ १११ का शेष भाग

में निमग्न रखना होगा, जिससे अन्य कोई चिन्तन मन में ना आए, और इन्द्रियों की लालसा जिस प्रकार न हो, वह होने से ही हो गया।''

प्रश्न – महाराज, इन्द्रियों की लालसा का यहाँ क्या अर्थ है?

महाराज – कितनी इन्द्रियाँ होती हैं? पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय। इन सब इन्द्रियों के विकार हैं – काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद (अहंकार) और मात्सर्य। इन सबका दमन करना होगा।

प्रश्न – इसलिए लगता है, बहुत कुछ सद्गुरु की कृपा से ही होता है।

महाराज – वह तो है ही। तुलसीदास का एक दोहा है –

सद्गुरु पावे भेद बतावे, ज्ञान करे उपदेश।
तब कोयला का मैला छूटे, जब आग करे परवेश।।

जैसे आग कोयले की मलिनता दूर करती है, वैसे ही सद्गुरु शिष्य के अन्तर की कालिमा दूर करते हैं। **(क्रमशः)**

स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (१३)

प्रव्राजिका व्रजप्राणा

(स्वामी विवेकानन्द की ग्रन्थावली का अधिकांश भाग गुडविन द्वारा लिपिबद्ध व्याख्यान-मालाएँ हैं। उनकी आकस्मिक मृत्यु पर स्वामीजी ने कहा था, ''गुडविन का ऋण मैं कभी चुका नहीं सकूँगा।... उसकी मृत्यु से मैं एक सच्चा मित्र, एक भक्तिमान शिष्य तथा एक अथक कर्मी खो बैठा हूँ। जगत् में ऐसे अति अल्प लोग ही जन्म लेते हैं, जो परोपकार के लिये जीते हैं। इस मृत्यु ने जगत् के ऐसे अल्पसंख्यक लोगों की संख्या एक और कम कर दी है।'' गुडविन के संक्षिप्त जीवन का अनुवाद पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

स्वामीजी के साथ गुडविन एवं अन्य लोगों की मण्डली स्टीमर द्वारा मद्रास से कलकता रवाना हुई और १९ फरवरी को वे खिदिरपुर पहुँचे। स्वामीजी और उनके साथी कलकत्ता जिस ट्रेन से आ रहे थे, उसके स्वागत के लिए सियालदह स्टेशन पर लगभग २०,००० लोग उपस्थित थे। वहाँ भी बहुत-से विजय-तोरण और उत्साहपूर्ण संगीत के बीच बड़ी शोभायात्राएँ निकाली गईं। छात्रों ने स्वामीजी की घोड़ागाड़ी से घोड़े निकाले और स्वयं खींचने लगे।

स्वामीजी के कलकता पहुँचने पर उन्हें बिल्कुल भी फुरसत नहीं थी। स्वामीजी दिन के समय गोपाल सील के भव्य भवन में रहते, जहाँ उनसे मिलने के लिए दिन-रात लोगों का ताँता लगा रहता। शाम के समय स्वामीजी काशीपुर से ढाई मील चलकर आलमबाजार मठ जाते और अपने गुरुभाइयों एवं नवागत साधुओं के साथ समय बिताते।

इस समय गुडविन सतत स्वामीजी के साथ रहते और स्वामीजी की सेवा करने का हर सम्भव प्रयास करते। स्वामी विरजानन्द उस समय आलमबाजार मठ में थे। अपने संस्मरण में वे कहते हैं, ''स्वामीजी के साथ उनके लंदन के शिष्य कैप्टन और श्रीमती सेवियर तथा श्रीमान् गुडविन थे...गुडविन छाया की तरह स्वामीजी के साथ रहते और उनकी सेवा करते। सचमुच, क्या अद्भुत सेवा थी उनकी !''

स्वामीजी के प्रति गुडविन के समर्पण और प्रसन्न स्वभाव ने उन्हें आलमबाजार मठ में सभी साधुओं का स्नेहभाजन बना दिया। स्वामी विरजानन्द जी अपने संस्मरणों में कहते हैं कि मठ में सभी लोग गुडविन से ठठ्ठा करते थे। स्वामी अखण्डानन्द, जो उस समय आलमबाजार मठ में रहते थे, अपने संस्मरण में कहते हैं, ''गुडविन बालक के समान नृत्य-गीत करता। उसके मुख से 'शंकर शिव बम भोला' सुनना बहुत ही मधुर लगता था। वह प्राय: मुझे पकड़ लेता और घूम-घूम कर नृत्य करता।''

निम्नलिखित प्रसंग महेन्द्रनाथ दत्त ने स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज से सुना था : 'स्वामीजी अमेरिका से लौटने के बाद गोपाल सील के घर में रहे थे और बाद में आलमबाजार मठ आए। रविवार को स्वामीजी गुडविन एवं अन्य लोगों के साथ गंगास्नान करने...आलमबाजार के घाट आए। स्वामीजी के स्नान के बाद गुडविन स्वामीजी के जूते और कमण्डलु को लेकर घाट पर प्रतीक्षा कर रहा था। स्नान के बाद स्वामीजी घाट की कीचड़ लगी सीड़ियों से ऊपर आए। उनके पैर कीचड़ से सन गए थे। क्या किया जाए? यद्यपि वहाँ अनेक लोग उपस्थित थे, तो भी किसी को समझ नही आया कि क्या किया जाए। गुडविन ने तत्क्षण कमण्डलू से पानी डालकर स्वामीजी के चरण धोए, अपनी उत्तरीय से उन्हें पोंछा और स्वामीजी को जूते पहनाने में मदद की। यह कोई बहुत बड़ा काम नहीं था, एक साधारण-सी सेवा थी। घाट पर अन्य लोग भी नहा रहे थे। उन लोगों के तो आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। स्वामीजी के बंगाली भक्तों में से किसी ने भी इसके बारे में सोचा नहीं था। किन्तु इस अंग्रेज शिष्य की अपने गुरु के प्रति क्या भक्ति थी! उसने अपनी उत्तरीय से स्वामीजी के चरण पोंछे और वह भी इतने लोगों के सामने!' इतना कहकर स्वामी ब्रह्मानन्द जी कुछ समय मौन रहे, उनकी आँखें स्थिर थीं। कुछ समय बाद वे बार-बार कहने लगे, ''गुडविन की अपने गुरु के प्रति क्या भक्ति है! इसे देखकर सीखना चाहिए, क्या ज्वलन्त उदाहरण है! जो व्यक्ति भारत के शासक-वर्ग से है, वह स्वामीजी के चरण धोता है और उनके पैरों में जूते पहनाता है!''

आलमबाजार मठ में जीवन आसान नहीं था। मठ प्रारम्भिक अवस्था में था और साधुओं का जीवन बहुत कष्टपूर्ण था। गुडविन ने इसे चुनौती मानकर सहर्ष स्वीकार किया। स्वामीजी चाहते थे कि गुडविन स्थानीय लोगों के समान ही जीवन यापन करें और वे भी ऐसा करने के लिए दृढ़ थे। निम्नलिखित प्रसंग महेन्द्रनाथ दत्त ने आलमबाजार मठ के साधुओं से सुना था, ''गुडविन एक अंग्रेज व्यक्ति के रूप में पले-बढ़े थे। किन्तु वे जब आलमबाजार मठ में आए, तो उन्होंने देखा कि यहाँ सभी फर्श पर कम्बल

बिछाकर सोते हैं और रात के समय सादा भात और दाल खाते हैं। गुडविन ने तुरन्त अपनी पुरानी आदतें बदल दीं। उन्होंने भी स्थानीय साधुओं की तरह सादा भात-दाल खाना शुरू किया और फर्श पर ही कम्बल बिछाकर सोने लगे। वहाँ बिस्तर एवं अन्य सुविधाएँ नहीं थीं। बहुत लोगों ने उन्हें सचेत किया कि इस प्रकार कष्टपूर्ण जीवन से उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा। किन्तु गुडविन किसी की नहीं सुनते और उसी प्रकार रहने लगे। कोई यदि उनसे पूछता, तो वे कहते, 'स्वामीजी ने जिस प्रकार तपस्या की थी, मैं भी वैसे ही करूँगा।' किन्तु गुडविन का शरीर क्षीण होने लगा और पहले के समान उनका प्रसन्न मिजाज और सजगता कम होने लगी।''

स्वामीजी की इच्छानुसार गुडविन ने ७ मार्च को श्रीरामकृष्ण देव के जन्मतिथि समारोह पर भाषण दिया। १६ मार्च को श्रीमती बुल को उन्होंने पत्र में लिखा था, ''दक्षिणेश्वर में (श्रीरामकृष्ण जन्मतिथि) समारोह में लगभग ६०,००० लोग थे । स्वामीजी ने मुझे भाषण देने के लिए कहा, कौन जाने कितने लोग वहाँ उपस्थित थे। सौभाग्यवश वहाँ इतना शोर था कि कोई भी सुन नहीं सका कि मैंने क्या मूर्खतापूर्ण बातें की। मैं पूरी तरह हिन्दू के समान ही रहता हूँ, नीचे बैठकर हाथों से भोजन करता हूँ और भी सब कुछ वैसे ही करता हूँ। इसके कारण पहले से ही मेरे यहाँ सैकड़ों मित्र हो चुके हैं।''

किन्तु स्वामीजी ने गुडविन को संन्यास देने के लिए श्रीरामकृष्ण देव की जन्मतिथि का जो दिन चुना था, वह दिन तो आया, किन्तु अनुष्ठान नहीं हुआ। ऐसा लगता है कि स्वामीजी ने उसे स्थगित किया था, जैसाकि उन्होंने २ जून को मैरी हेलबोइस्टर को पत्र में लिखा था, ''तुम्हें भारतीय वेशभूषा में (गुडविन को) देखना चाहिए था। बहुत शीघ्र मैं उसका मुण्डन करवा कर उसे पूरा संन्यासी बना दूँगा।'' किन्तु यह 'बहुत शीघ्र' कभी नहीं आया।

कठिन परिश्रम और अप्रिय जलवायु के कारण स्वामीजी और गुडविन दोनों का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। ८ मार्च को स्वामीजी और गुडविन कलकत्ता से दार्जिलिंग रवाना हुए। अनेक कठिनाइयों के बीच भी गुडविन ने आशुलिपिक के रूप में अपना कार्य जारी रखा। १६ मार्च, १८९७ को गुडविन ने दार्जिलिंग से जोसेफीन मेक्लाउड को पत्र में लिखा, ''हमारा पूरा समय यात्रा में जा रहा है और स्वामीजी ने इतने व्याख्यान दिए हैं कि मेरे दिन उन्हें लिपिबद्ध करने में बीत गए...उन्होंने बहुत वक्तृताएँ दी हैं और अब मैं उन्हें पुस्तकाकार में प्रकाशित करने के तैयारी में व्यस्त हूँ, जिसमें उनके कोलम्बो से कलकत्ता तक के व्याख्यानों का संग्रह होगा।'' **(क्रमश:)**

पृष्ठ १२८ का शेष भाग

उनके भोजन न करने से घर में सबको दुख होगा। विश्वरूप ने उन्हें आश्वासन दिया कि अब की बार कोई गलती नहीं होगी। ब्राह्मण किसी प्रकार राजी हुए।

निमाई को रस्सी से बाँध दिया गया और उनके बड़े भाई विश्वरूप और माता साथ में ही थे। उस समय रात भी हो चुकी थी। ब्राह्मण ने भोजन बनाकर जैसे ही भगवान को अर्पण किया, तब भगवान उनके सामने प्रकट हुए और हँसकर कहा, ''तुम मुझे बुला रहे थे। मैं बालक के रूप में तुम्हारे पास आया और तुमने मुझे पहचाना नहीं। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे वरदान माँगो।'' ब्राह्मण ने उनसे भक्ति-प्राप्ति का वरदान माँगा। अगले दिन सुबह उन्होंने बालक निमाई को मन-ही-मन प्रणाम किया और चले गए।

OOO

पृष्ठ ११६ का शेष भाग

लिखते समय मेरे मन में एक साथ ही घृणा तथा लज्जा का उद्रेक होता है । सदर रास्ते के दोनों तरफ नर-नारी अबाध रूप से बैठकर मल-मूत्र त्याग करते हैं । जो लोग उनके बीच से होकर गुजरते हैं, उनमें से कोई उधर दृष्टि तक नहीं उठाता । मैं परदेशी था, अत: ऐसा अनाचार देख मुख ढके हुए आता था । बाद में यथासम्भव रात के समय नगर में कहीं भी आना-जाना नहीं करता था । आश्चर्य की बात यह है कि नगर के पशु सब तत्काल चट कर जाते थे । सुबह देखने में आता कि इतने बड़े नगर की सारी सड़कें स्वच्छ हो चुकी हैं ।

सेठजी मेरे लिये एक गाय को घर में ही बँधा हुआ रखकर खिलाते थे; और उसी गाय का दूध मुझे पिलाते थे । **(क्रमश:)**

रामकृष्ण मिशन संचालन समिति की संक्षिप्त रिपोर्ट : वर्ष २०१७-१८

रामकृष्ण मिशन

(मुख्य कार्यालय) पो. बेलुड़ मठ, जिला-हावड़ा, पश्चिम बंगाल - ७११ २०२

ई-मेल : rkmhq@belurmath.org, **वेबसाइट :** www.belurmath.org

रामकृष्ण मिशन की वार्षिक साधारण सभा रविवार, १६ दिसम्बर, २०१८ को शाम ३.३० बजे बेलूड़ मठ में आयोजित की गयी। इसमें प्रस्तुत की गयी संक्षिप्त रिपोर्ट निम्नलिखित है –

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन तथा उसके केन्द्रों को वर्ष २०१७-१८ में निम्नलिखित सम्मान प्राप्त हुए –

१. दिव्यायन कृषि विज्ञान केन्द्र, **राँची, मोराबादी आश्रम** को राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के द्वारा **'दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रीय कृषि विज्ञान प्रोत्साहन पुरस्कार'** से सम्मानित किया गया। २. रामकृष्ण मठ और मिशन को आध्यात्मिक गतिविधियों के द्वारा धर्म-समन्वय का कार्य करने के लिये World Book of Records, London में सूचीबद्ध किया गया। ३. कामारपुकुर एवं नरेन्द्रपुर विद्यालय को 'विद्यालय शिक्षा प्रभाग, पश्चिम बंगाल शासन' द्वारा **'सर्वश्रेष्ठ विद्यालय'** सम्मान से सम्मानित किया गया। ४. विवेकानन्द महाविद्यालय, चेन्नई विद्यापीठ ने महाविद्यालयीन स्तर पर अखिल भारत स्वच्छता अभियान में तीसरा स्थान अर्जित किया।

रामकृष्ण मठ एवं मिशन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा **'स्वामी अभेदानन्द की १५०वीं जयन्ती समारोह'** के उपलक्ष्य में 'भारतीय संस्कृति एवं दर्शन' पर ४ सेमिनार तथा अन्य अनेक कार्यक्रम राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित किये गये।

रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के प्रधान कार्यालय तथा देश-विदेश की अनेक शाखाओं में **'भगिनी निवेदिता की १५०वें जयन्ती समारोह'** का आयोजन किया गया। इस अवसर पर आयोजित ११५ सेमीनार तथा शिविरों में लगभग ५५,००० लोगों ने भाग लिया एवं लगभग ५०,००० विद्यार्थियों ने सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं में भाग लिया। भगिनी निवेदिता पर कुछ नई पुस्तकें भी विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित की गयीं।

रामकृष्ण मिशन के नये केन्द्र आरम्भ किए गए –

१. गोवा २. लुमडंग, अरुणाचल प्रदेश ३. झाड़ग्राम, पश्चिम बंगाल ४. न्यू टाऊन, कोलकाता ५. दावनगेरे, कर्नाटक और ६. डिब्रूगढ़, असम। उत्तर प्रदेश के अयोध्या में लखनऊ मिशन सेवाश्रम ने एक उपकेन्द्र आरम्भ किया।

शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित परियोजनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं – १. NAAC के द्वारा शिक्षा महाविद्यालय, कोयम्बटुर मिशन को A++ श्रेणी और विवेकानन्द महाविद्यालय चेन्नई विद्यापीठ को A+ श्रेणी से सम्मानित किया गया। २. विवेकानन्द शताब्दी कॉलेज, रहड़ा को यू.जी.सी. द्वारा ६ वर्षों के लिये स्वायत्तता प्रदान की गयी। ३. विशाखापट्नम केन्द्र के द्वारा 'Viveka Institute of Excellence आरम्भ किया गया, जिसमें विशेषकर युवकों के लिए जीवन-विकास सम्बन्धी पाठ्यक्रम एवं अन्य योजनाएँ संचालित की गईं। ४. कोयम्बटूर, विजयवाड़ा और विशाखापट्नम केन्द्रों ने अपने-अपने विद्यालय में स्मार्ट-कक्षा प्रारम्भ किये।

चिकित्सा-सेवा क्षेत्र में निम्नलिखित नये विकास-कार्य हुए – १. **ईटानगर अस्पताल** में चार नये विभाग (i) Oncology (ii) Plastic surgery (iii) Cardiology (iv) Ayurveda प्रारम्भ किये गये । २. **लखनऊ अस्पताल** को NABH (National Accreditation Board for Hospitals & Healthcare Providers) के द्वारा ३ वर्षों के लिए मान्यता प्राप्त हुई । ३. **वृन्दावन अस्पताल** द्वारा Cardiac Catherterization Laboratory और Cancer Centre प्रारम्भ किया गया। ४. **वाराणसी सेवाश्रम** द्वारा Dental और Pharmacy तथा इकाई प्राम्भ की गयी। ५. हमारे अनेक अस्पताल एवं चिकित्सा-केन्द्रों द्वारा Diagnostic Laboratories हेतु नवीन चिकित्सकीय उपकरण सम्मिलित किये गये।

ग्रामीण विकास क्षेत्रों में विशेष उल्लेखनीय नई परियोजनाएँ निम्नलिखित हैं : १. **चेन्नई स्टुडेन्ट होम** द्वारा ग्राम पूवालाम्बेदु, जिला तिरूवल्लूर में सामुदायिक भवन का निर्माण कराया गया। २. **राँची मोराबादी** केन्द्र द्वारा ६९६९ हेक्टेयर भूमि को सिंचित करने के लिये जलाशय (वाटरशेड) का निर्माण कराया गया और विभिन्न प्रकार के सुगन्धित चावल की फसलों के रख-रखाव के लिए दो परियोजनाएँ प्रारम्भ की गयीं। इस केन्द्र के द्वारा 'ग्रामीण बीज योजना' के अन्तर्गत कृषकों को धान के बीज के संरक्षण के लिये प्रशिक्षण दिया

जाता है। इस योजना के अन्तर्गत २५ ग्रामों के कृषकों द्वारा १,०२५ क्विंटल धान का बीज उत्पादन किया गया।

हमारी अनेक शाखाओं ने **'स्वच्छ भारत अभियान'** के अन्तर्गत 'स्वच्छता बनाएँ' तथा 'स्वच्छता जागरुकता अभियान' में भाग लिया। मंगलूर केन्द्र द्वारा किये गये कार्यक्रम विशेष उल्लेखनीय हैं – १. मंगलूर और उसके आसपास के क्षेत्रों में १८४ स्थानों पर स्वच्छता अभियान चलाया गया। २. दक्षिण कन्नड़ जिले में ३३२ गाँवों में स्वच्छता अभियान चलाया गया। ३. ११० विद्यालयों में ४२६ 'स्वच्छता जागरुकता अभियान' के माध्यम से करीब ४४,००० विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया।

रामकृष्ण मठ द्वारा संचालित निम्नलिखित परियोजनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं : १. **आँटपुर** और **नागपुर** केन्द्रों में नवीन चिकित्सा-केन्द्रों का निर्माण हुआ। २. **कूच बिहार** एवं **राजकोट** केन्द्र द्वारा अपने चिकित्सा विभाग का विस्तार किया गया। ३. **नटरमपल्ली** केन्द्र के द्वारा विद्यालय भवन का विस्तार किया गया। ४. **बागदा मठ** द्वारा Coching-cum-Vocational Training Centre की शुरुआत की गयी।

भारत के बाहर निम्नलिखित नवीन परियोजनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं : १. **जैसोर (बांग्लादेश)** में नवीन श्रीरामकृष्ण मंदिर-प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। २. **फिनिक्स (दक्षिण अफ्रिका)** के इनाडा में गम्भीर अवस्थावाले रोगियों के लिये रसोईघर एवं भोजनालय का निर्माण कराया गया। ३. **ढाका (बांग्लादेश)** केन्द्र द्वारा शताब्दी समारोह का आयोजन किया गया तथा **सिंगापुर** बालवाड़ी शाखा केन्द्र द्वारा रजत जयन्ती समारोह मनाया गया।

रामकृष्ण मठ और मिशन के द्वारा देश के विभिन्न भागों में अनेक **राहत और पुनर्वास कार्य** किये गये, जिसमें ४४ करोड़ रुपये खर्च हुए, जिससे १०.५३ लाख लोग लाभान्वित हुए।

इस वर्ष मिशन द्वारा **जन-कल्याण कार्य** के अन्तर्गत गरीब छात्रों, वृद्धा, बेसहारा एवं बीमार लोगों को आर्थिक सहायता के रूप में १७ करोड़ रुपये दिये गये।

मिशन द्वारा संचालित १० अस्पतालों, ८० चिकित्सा-केन्द्रों, ४० चल चिकित्सा इकाइयों और ९२८ चिकित्सा शिविरों के माध्यम से ७२.७४ लाख लोगों को **चिकित्सा सेवा** प्रदान की गयी, जिसमें २२७ करोड़ रुपये व्यय हुए।

शिक्षा क्षेत्र में बालवाड़ी से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक, औपचारिक शिक्षा केन्द्रों, रात्रि-विद्यालयों, कोचिंग कक्षाओं आदि में पढ़नेवाले लगभग २.३१ लाख छात्रों पर ३२४ करोड़ रुपये व्यय किये गये।

ग्रामीण और आदिवासी विकास परियोजनाओं के द्वारा ७१ करोड़ रुपये व्यय कर ४२.८६ लाख लोगों को लाभान्वित किया गया।

रामकृष्ण मठ और मिशन द्वारा संचालित सेवा-कार्यक्रम को आगे बढ़ाने में हम सभी सदस्यों और मित्रों को उनकी सहायता के लिये इस अवसर पर हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

स्वामी सुवीरानन्द

महासचिव

१६ दिसम्बर, २०१८

○○○

पृष्ठ १०९ का शेष भाग

नहीं, एकदम देसी माल है और यह इतना तेज है कि तुम इसे पचा नहीं पाओगे। तब कालीपद घोष हाथ जोड़कर श्रीरामकृष्ण से कहते हैं, ठाकुर मेरा गला सूख रहा है, मुझे थोड़ी-सी शराब पिला दो, मुझे नशा करना है। श्रीरामकृष्ण फिर कहते हैं, मैं तुम्हें ऐसा नशा करवाऊँगा कि तुम्हारा यह नशा सारी जिन्दगी तुम्हारे सर से नीचे नहीं उतरेगा। यह कहकर श्रीरामकृष्ण सीधे कालीपद घोष को स्पर्श करते हैं। श्रीरामकृष्ण के स्पर्श के जादू के बारे में अधिक कहने की जरूरत नहीं है। जैसाकि हमने पहले उल्लेख किया कि श्रीअरविन्द घोष श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में क्या कहते हैं? वे कहते हैं कि श्रीरामकृष्ण में देखने को मिलती है – अति विशाल आध्यात्मिक क्षमता, अति विशाल आध्यात्मिक योग्यता, अति विशाल आध्यात्मिक शक्ति। उनमें स्पर्श मात्र से मानव को एक नये रूप में गढ़ने की क्षमता थी। अब जैसे ही श्रीरामकृष्ण ने कालीपद को स्पर्श किया, वे कालीपद, जो शराब के नशे में धुत थे, उन्होंने रोना शुरू कर दिया। रोते रहे, रोते रहे, सिसक-सिसक कर रो रहे थे, बिलख-बिलख कर रो रहे थे। कोई उन्हें संभाल नहीं पाया। तो हुआ क्या था? श्रीरामकृष्ण ने अपने स्पर्श से उस दिन इन कालीपद के अन्दर से एक नये मनुष्य को गढ़ने का कार्य शुरू कर दिया था। **(क्रमशः)**

रामकृष्ण मिशन आश्रम, औरंगाबाद, महाराष्ट्र में श्रीरामकृष्ण के सार्वजनीन मन्दिर का भव्य उद्‌घाटन

रामकृष्ण मिशन आश्रम, औरंगाबाद में भगवान श्रीरामकृष्ण देव के सार्वजनिक ध्यान मन्दिर का उद्‌घाटन १७ नवम्बर, २०१८, जगद्धात्री पूजा के पावन दिवस को प्रात: ७.३० बजे रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ उपाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी वागीशानन्द जी महाराज के द्वारा किया गया। इस शुभ अवसर पर रामकृष्ण संघ के अन्य दो उपाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी महाराज और पूज्यपाद स्वामी शिवमयानन्द जी महाराज भी उपस्थित थे।

इस कार्यक्रम में रामकृष्ण मठ-मिशन के सह-महासचिव स्वामी बलभद्रानन्द जी महाराज, रामकृष्ण मठ-मिशन के न्यासी स्वामी विमलात्मानन्द जी महाराज, स्वामी ज्ञानलोकानन्द जी महाराज, स्वामी मुक्तिदानन्द जी महाराज, स्वामी सत्येशानन्द जी महाराज और अन्य कई वरिष्ठ साधुओं ने भाग लिया और विभिन्न विषयों पर व्याख्यान दिये। १५ नवम्बर, २०१८ को प्रात: ८ बजे से ही यज्ञशाला में वर्धिनी पूजन, जलयात्रा, मंडप पूजन, गणेश पूजन आदि प्रारम्भ हो गये थे। यह त्रिदिवसीय महोत्सव इस प्रकार सुन्दर ढंग से मनाया गया।

१६ नवम्बर, को यज्ञशाला में प्रात: ८ बजे से सायं ५ बजे तक देव-स्थापन, शान्ति पाठ, विष्णु यज्ञ और आरती हुई। नये मन्दिर में प्रात: ६ बजे से सायं ९ बजे तक गणेश-पूजा और अधिवास हुआ। प्रात: ८.१५ स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने 'विवेकानन्द हॉल' का और ८.३० बजे स्वामी शिवमयानन्द जी महाराज ने 'साधु निवास' का उद्‌घाटन किया।

कार्यक्रम-पंडाल में ९ बजे से १ बजे तक स्वामी वीरभद्रानन्द, स्वामी राघवेन्द्रानन्द ने युवकों हेतु स्वामी विवेकानन्द पर व्याख्यान दिये। 'भारत विकास ग्रुप इंडिया लिमिटेड' के अध्यक्ष श्री हनुमन्त गायकवाड़ ने स्वामी विवेकानन्द से अनुप्राणित होकर कर रहे अपनी व्यापक सेवाओं को बताया। सभा की अध्यक्षता स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने की। स्कूल के छात्रों ने स्वामीजी के जीवन पर आधारित कई लघु नाटक प्रस्तुत किये। २.३० से ३ बजे तक छात्रों द्वारा ही 'नचिकेता' नाटक का मंचन हुआ। अपराह्न ३ बजे की सार्वजनिक सभा में स्वामी शान्तात्मानन्द, स्वामी सत्येशानन्द, स्वामी आत्मप्रियानन्द, स्वामी सुप्रियानन्द जी ने व्याख्यान दिये और स्वामी सर्वलोकानन्द जी ने अध्यक्षता की।

१७ नवम्बर, २०१८ को प्रात: ६.३० बजे से देश-विदेश के विभिन्न स्थानों से पधारे सैकड़ों महात्माओं द्वारा भजन-कीर्तन के साथ नये मन्दिर की परिक्रमा की गई। उसके बाद ७.३० बजे रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ उपाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी वागीशानन्द जी महाराज के कर-कमलों द्वारा मन्दिर का उद्‌घाटन किया गया। उसके बाद यज्ञशाला में स्थापित देव-पूजन, कलश-पूजन, अभिषेक, चंडीपाठ और नये मन्दिर में हवन, पूर्णाहुति और आरती आदि हुई। ९ बजे से ९.३० बजे तक स्वामी दिव्यव्रतानन्द जी के भजन हुए। १०.३० बजे से १.३० बजे तक लोकार्पण सार्वजनिक सभा हुई। अध्यक्षता स्वामी वागीशानन्द जी महाराज ने की। आश्रम के सचिव स्वामी विष्णुपादानन्द जी ने सभी अभ्यागत सन्तों, भक्तों-अतिथियों का स्वागत किया और मन्दिर निर्माण के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें बताईं। सभा में श्रीरामकृष्ण देव के सार्वजनीन सन्देशों और हमारे रामकृष्ण मन्दिर का महत्त्व पर रामकृष्ण संघ के विद्वान संन्यासियों के प्रवचन हुये। सभा को स्वामी गौतमानन्द, स्वामी शिवमयानन्द, स्वामी योगात्मानन्द, स्वामी बलभद्रानन्द, स्वामी पीताम्बरानन्द जी ने सम्बोधित किया। अपराह्न ३ से ६ बजे की सभा के अध्यक्ष रामकृष्ण संघ के न्यासी स्वामी गिरीशानन्द जी महाराज थे। स्वामी सुमनसानन्द, स्वामी सर्वभूतानन्द, स्वामी मुक्तिदानन्द, स्वामी ध्रुवेशानन्द जी ने श्रीमाँ पर प्रवचन दिये। १८ नवम्बर, २०१८ को भक्त सम्मेलन था, जिसमें स्वामी विश्वात्मानन्द, स्वामी सत्यरूपानन्द, स्वामी आत्मविदानन्द, स्वामी श्रीकान्तानन्द, स्वामी निर्विकारानन्द आदि ने व्याख्यान दिये। विभिन्न सत्रों में कई सुन्दर नाटक प्रस्तुत किये गये।

१८,१९ नवम्बर को साधुओं को घृष्णेश्वर, परली वैद्यनाथ, औंढा नागनाथ तीर्थयात्रा और अजन्ता-एलोरा भी भ्रमण कराया गया। इस लोकार्पण महोत्सव में कुल ३२५ साधुओं और ५००० भक्तों ने भाग लिया। ○○○